चंबा

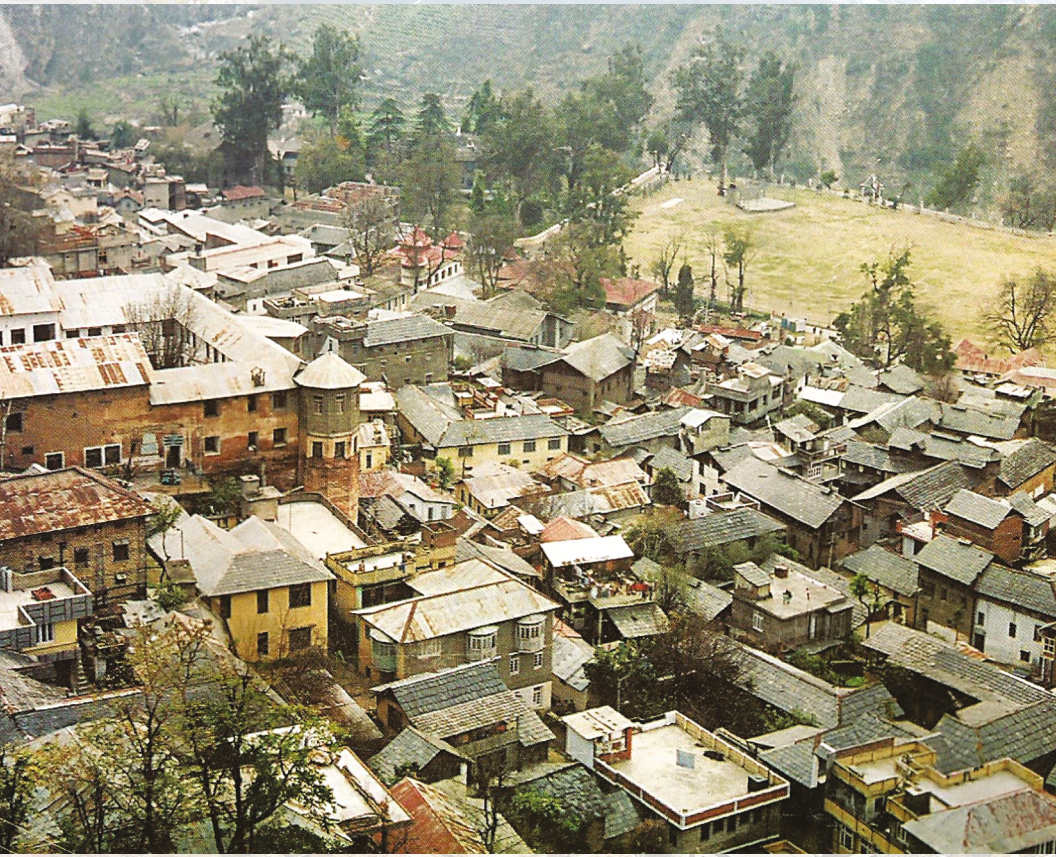

सुदर्शन वशिष्ठ

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)

चंबा

सुदर्शन वशिष्ठ

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
नई दिल्ली

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
15ए, सेक्टर-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 2018
© सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
आवरण : वर्तमान चंबा (हिमाचल प्रदेश, भारत)

नगरों पर आधारित पुस्तक-शृंखला के बारे में

भारत राष्ट्रीयता के साथ स्थानीय संस्कृतियों से संपन्न देश है। विभिन्न क्षेत्रों, नगरों की विशेषताएँ इस देश को महत्त्वपूर्ण बनाती हैं। ये मात्र भौगोलिकता तक सीमित नहीं। इनमें रुचियों के विभिन्न पहलू देखे जा सकते हैं, जैसे वहाँ की वास्तुकला, धर्म, लोकगीत, वेशभूषा, भाषा, प्रकृति, पर्यावरण आदि। कई बार ये आपस में जुड़ते हैं तो कई बार सीमाओं का अतिक्रमण भी करते हैं। स्थानीयता के बावजूद उनमें ऐसे तत्त्व होते हैं जो भारतीयता के सहज आधार बनते हैं। यदि गाँव सांस्कृतिक एकरूपता के प्रतीक हैं तो शहर सांस्कृतिक विविधता के प्रतीक। ये एक तरह से हमारी ऐतिहासिक/सांस्कृतिक धरोहर हैं।

संस्कृति मंत्रालय व सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र की संयुक्त अवधारणात्मक फलश्रुति हैं – इस शृंखला के तहत विभिन्न लघु नगरों/नगरों पर प्रकाशित होने वाली पुस्तकें। हमने पाया कि इन लघु नगरों/कस्बों/नगरों की श्रेष्ठ सांस्कृतिक विरासत को पुस्तक-वैचारिकी के रूप में सबके सामने तथ्यपरक ढंग से प्रस्तुत किया जाए ताकि वहाँ का सांस्कृतिक/शैक्षिक व अन्य विविध वैभव उजागार हो सके। इस माध्यम से न केवल उस लघु नगर/नगर के लोग अपनी सांस्कृतिक आभा से परिचित हो सकेंगे वरन् वे लोग भी जो ठीक से उन शहरों की संस्कृतियों से रूबरू नहीं हो पाए हैं उनको जान सकेंगे।

आज के समय में तीव्र सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन शहरी जीवन की विशेषता बनते गए हैं तथा पारंपरिक व शाश्वत महत्त्व पृष्ठभूमि में चले गए हैं। हमारी कोशिश है कि इन दोनों धाराओं को इन पुस्तकों में समाहित करते हुए हम परिपूर्णता का प्रयत्न करें। शहरी जीवन के लाभ ने मानदण्डों, विचारसरणियों और व्यवहार पैटर्नों के संबंध में परिवर्तन किए हैं किंतु पारंपरिक प्रसंगों, लोकगीतों, स्थानीय जीवन की प्रत्याशाओं के बगैर इनको नए रूप में पहचाना नहीं जा सकता। कई लघु नगर/नगर/वृहत् ग्राम भारत की आज़ादी के आंदोलन की पृष्ठभूमि में रहे हैं तथा कई कलाओं, संस्कृतियों को विन्यस्त करने की दिशा में अग्रणी। कई ने स्थानीयता के अलावा भारतीय जीवन के संस्कार निर्मित किए हैं तो कइयों ने हमारी आज की दृष्टियाँ निर्मित की हैं।

इन विशिष्ट लघु नगरों/नगरों पर आधारित पुस्तक-शृंखला में 'चंबा' पुस्तक आपको सौंपते हुए मुझे हर्ष है। मुझे आशा व विश्वास है कि यह पुस्तक सिर्फ़ शहर की गाथा न होकर संस्कृति, जिजीविषा, नवाचार, परंपरा, जिज्ञासा, समझ व नए समय को दर्शाती जीवन-दृष्टि की वाहक के रूप में पाठकों के बीच आदर का विषय बनेगी।

गिरीश चंद्र जोशी
निदेशक, सीसीआरटी

अनुक्रम

1.	सुगंध की यादें (बातें अतीत की, वर्तमान : चंबा अचंभा)	7
2.	कैसे हुई राजधानी और नगर की स्थापना	15
3.	लोक गीतों में चंबा	17
4.	त्रासद रही चंपा की स्थापना (त्रासद कथा : एक, त्रासद कथाः दो, त्रासद कथाः तीन)	21
5.	लक्ष्मीनारायण मंदिर	24
6.	हरिराय मंदिर	27
7.	चंबा कलम (कला का प्रारंभ, प्रमुख चित्रकार, कुछ महत्त्वपूर्ण चित्र)	29
8.	चंबा रूमाल (पहाड़ी कलम और हस्तशिल्प का सम्मिश्रण, तकनीक, महत्ता व प्रयोग)	40
9.	अन्य कलाएं (गंजीफा, आभूषण काष्ठागार, बंगद्वारी, भित्ति चित्र, धातु शिल्प, चंबा चप्पल)	44
10.	भूरिसिंह संग्रहालय	49
11.	गाथा रानी सूही की	53
12.	मिंजर महोत्सव	58
13.	यात्रा अजेय मणिमहेश की	62
14.	जातर या जातरा	66
15.	लोहड़ी उत्सव	69
16.	गद्दी जनजाति	72
17.	चंबयाली एवं गदयाली भाषा	77
18.	वेशभूषा एवं आभूषण	79
19.	गुज्जर	83
20.	शिव पूजा का उत्सव नुआला	85
21.	शैव वैष्णव संगम	91
22.	चंद्रशेखर मंदिर और पत्थर पर लिखी प्रेम कविता	94

23. प्रवासी पंछी 102
24. राजा हरिसिंघ और गद्दण 113
25. भंवरे सी दाढ़ी वाला भुंकू 118
26. लोक नाट्य 124
27. लोक नृत्य 127
28. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 129
(चंबा राज्य : कुछ तथ्य, कुछ और तथ्य,
कथा प्रथम शासक की, कथा मूषक वर्मन की,
महादानी बलभद्र वर्मन, पृथ्वी सिंह, भूरि सिंह, राजा रामसिंह)
29. पुरातन राजधानी भरमौर के महत्त्वपूर्ण शिलालेख 139
(भ्रदकाली लक्षणा देवी, गणेश, नंदी, युगाकर वर्मन का भरमौर
ताम्रपत्र, भरमौर शिलालेख, छतराड़ी के लेख, गूं शिलालेख)
30. परिशिष्ट (कुछ अन्य लोक गीत) 150
31. संदर्भ ग्रंथ 158

सुगंध की यादें

चंपा के सुगंधित वृक्षों से सुवासित रहा होगा कभी चंबा। आज भी लोक कवि 'चंबे दा फुल्ल' का वर्णन करते हैं। 'चंबे दी कली' की सुगंध पंजाब तक फैली और गीतों के बोल बनी। पंजाबी में 'चंबे दी कली' फिल्म बनी। क्या चंपा के फूल यहां महकते रहे होंगे! क्या यही वह चंपा का फूल था जो कालांतर में चंबा बना!.... हो सकता है। आज भी यहां चंपा के फूल महकते हैं।

चंपा के फूलों की महक दूर दूर तक फैली रहती है। इन की महक इतनी तेज़ होती है भंवरे पास नहीं फटकते। कवि ने कहा हैः

चंपा तुझ में तीन गुण सुंदर, सुखद, सुवास।
अवगुण तुझ में एक है, भ्रमर न आवे पास।।

पुरातन चंबा

चंबा के लोकगीतों में भी इस फूल का वर्णन किया गया है। स्थानीय भाषा में इसे 'चंबा' कहा गया हैः

फुल्लां दी भरी ए चंगेर, चंबे दी इक कली।
खंडू दी भरी ए परात, मिसरी दी इक डली।
तू मेरी चंचल जेही नार, बिसरे न इक घड़ी।

---फूलों की चंगेर भरी हुई है, चंबे की एक कली है। खांड की परात भरी हुई, मिसरी की एक डली है। तू मेरी चंचल नार है जो एक घड़ी भी नहीं बिसरती। यानी

फूलों की चाहे एक टोकरी भरी रहे, चंबे की एक कली ही काफ़ी है।

इस तरह चंपा के फूल का गुणगान कविता व लोकगीतों में बहुत बार हुआ है।

चंपा को पुरातन समय में 'चंपक' भी कहा जाता रहा है।

1839 में विगने ने चंबा की जनसंख्या चार हजार से पांच हजार आंकी थी। वोगल ने 1911 में इसे छह हजार बताया। उस समय सबसे महत्त्वपूर्ण बिल्डिंग महल की थी जिसका सबसे पुराना भाग अठारहवीं शताब्दी के मध्य में बना।

2011 में इस शहर की जनसख्या 21,214 थी जो अब लगभग पच्चीस हजार है। दूर से देखने पर महल आज भी भव्य दिखता है। लक्ष्मीनारायण मंदिर भी

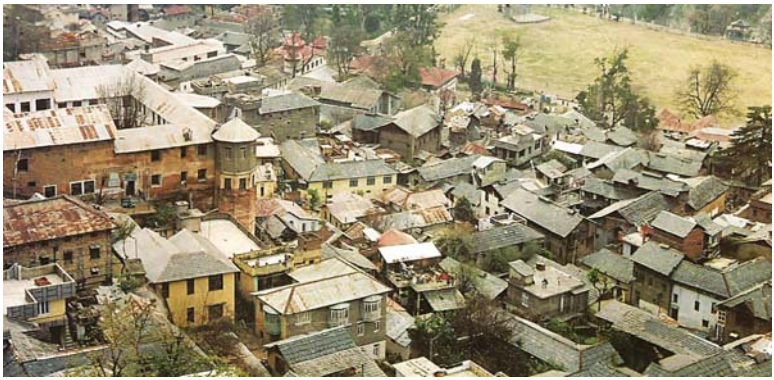

वर्तमान चंबा

नज़र आता है। किंतु आसपास घनी आबादी बस गई है। 4.33 स्केयर कि.मी. में फैली चंबा नगरपालिका में 4,556 घरों में 905 परिवार रहते हैं।

2001 की जनगणना के अनुसार, चंबा जिला की कुल जनसंख्या 4,60,887 है जो 2011 में बढ़कर 5,19,080 हो गई जिसमें 2,61,320 पुरुष तथा 2,57,760 महिलाएं हैं। भारत सरकार की जनगणना में यह आंकड़ा 5,18,844 है जिस में शहरी जनसंख्या 36,191 बताई गई है। जनसंख्या में चंबा जिला हिमाचल प्रदेश के बारह जिलों में सातवें स्थान पर है तो साक्षरता में आठवें पर।

जिला के हर भाग में पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की संख्या कम है।

छह मंदिरों का लक्ष्मीनारायण मंदिर समूह, जिसमें तीन विष्णु और तीन शिव को समर्पित हैं; चंपावती मंदिर जिसे स्थानीय भाषा में चमेसणी मंदिर कहते हैं, अद्वितीय विष्णु चतुर्मूर्ति प्रतिमा के साथ हरिराय मंदिर, आज उस ऐतिहासिक वैभव की याद दिलाते हैं जो इस राजधानी के अतीत के साथ जुड़ा हुआ है। इस समय

लक्ष्मीनारायण मंदिर (पुरातन फोटो)

लक्ष्मीनारायण मंदिर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के पास है। चमेसणी मंदिर प्रदेश सरकार के भाषा एवं संस्कृति विभाग के अधीन राज्य संरक्षित स्मारक था। अब भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण विभाग के पास है।

शिमला शहर हनुमान मंदिर जाखू या चर्च के कारण जाना जाता है, अमृतसर स्वर्ण मंदिर के कारण उसी प्रकार चंबा की पहचान लक्ष्मीनारायण मंदिर समूह के कारण है।

यह मंदिर और स्मारक हमें दस शताब्दियां पीछे ले जाते हैं जब इस सुंदर स्थान पर साहिल वर्मन की राजकुमारी चंपावती की नज़र पड़ी।

बातें अतीत की

चंबा एक दुर्गम और दूरस्थ पहाड़ी राजधानी रही। यद्यपि यहां आधुनिकता की ओर कदम बहुत पहले उठने आरंभ हो गए थे। राजा श्री सिंह (1844) के समय मेजर रीड ने चंबा में महत्त्वपूर्ण सुधार कार्य आरंभ किए। श्री सिंह पढ़ा लिखा नहीं था तथापि बुद्धिमान था। एक यूरोपीय अधिकारी के अधीन सड़कों के निर्माण के लिए लोक निर्माण विभाग खोला गया। दुर्गम क्षेत्रों में सड़कें बनाईं गईं। चंबा और खजियार में डाकबंगले बनवाए। सन् 1870-71 में राजा के लिए महल बनवाया गया।

सन् 1863 में चंबा में एक डाकघर खोला गया और चंबा तथा डलहौजी के बीच डाक आने जाने लगी। इसी वर्ष एक प्राइमरी स्कूल खोला गया जो बाद में हाई स्कूल बना। सितंबर 1864 में वन संपदा दोहन के लिए राजा से पट्टे पर वन ले लिए गए। वनों से बाईस हजार रुपये वार्षिक आय होने लगी।

सितंबर 1866 में चंबा में एक अस्पताल खोला गया जिसमें एक अंग्रेज डॉक्टर को तैनात किया गया। उसी समय विवाह कर, व्यापार कर जैसे कर समाप्त

पुराना संस्पेंशन पुल

कर दिए गए।

सन् 1876 में कर्नल रीड ने भू राजस्व बंदोबस्त आरंभ किया। कर्नल रीड के बाद मि.आर.टी. बर्ने ने भरमौर तक लगभग बीस मील लंबी सड़क बनवाई। चंबा से चौरी तथा खजियार तक सड़क निर्माण किया गया।

जनवरी 1887 में डाकघर इंपीरियल पोस्टल सिस्टम के अंतर्गत आ गया और चंबा के आसपास चौंतीस डाकघर खोले गए। विधि विभाग की व्यवस्था ब्रिटिश सिस्टम के अनुसार कर दी गई। लोक निर्माण विभाग का पुनर्गठन किया गया। महल का जीर्णोद्धार किया गया। रावी के क्षतिग्रस्त सस्पेंशन पुल को लगभग एक लाख रुपये की लागत से पुनः बनवाया गया।

ब्रिटिश शासन के दौरान हिज हाईनेस राजा शाम सिंह को अन्य पहाड़ी राज्यों मंडी, कहलूर, सुकेत के समान ग्यारह तोपों की सलामी दी जाती थी। हिंद सरकार के विदेशी विभाग की चिट्ठी नंबर 5731 तिथि 8 फरवरी 1889 के अनुसार दरबार में तरतीबबार बैठने की फेहरिस्त में चंबा का सातवां स्थान था। यह राज्य कमिश्नर लाहौर की निगरानी में रखा गया था और राज्य की वार्षिक आय तीन लाख आंकी गई थी। राज्य का क्षेत्रफल 3216 वर्गमील था और जनसंख्या 1,15,773। एक नवंबर 1921 को राजा राम सिंह के समय चंबा राज्य को सीधा ब्रिटिश सरकार में मिला लिया गया। 8 दिसंबर 1921 को टिक्का लक्ष्मण सिंह का जन्म हुआ।

ब्रिटिश शासन में चंबा में स्वाधीनता के लिए विद्रोह होते रहे। राजा श्री सिंह ने अंग्रेजों के प्रति वफादारी निभाई अतः 1857 के क्रांति के समय राज्य में कड़ी सुरक्षा व्यवस्था रखी गई। राजा ने डलहौजी व अन्य स्थानों में बसे अंग्रेजों को सुरक्षा दी। रावी के घाटों पर भी सैनिक तैनात कर दिए गए। राज्य ने लगभग साठ क्रांतिकारी पकड़े जिनमें लगभग तीस को जेल में डाला गया।

आजाद हिंद फौज में चंबा के लगभग 36 सेनानियों ने भाग लिया था।

8 मार्च 1948 को पहाड़ की सत्ताईस रियासतों ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए, इन में शिमला हिल स्टेट्स की अट्ठाइस रियासतों के साथ पंजाब हिल स्टेट्स की दो रियासतें चंबा तथा मंडी-सुकेत भी शामिल थीं। अतः केंद्र शासित चीफ कमिश्नर प्रोविंस में शिमला हिल स्टेट्स के जिला महासू के साथ चंबा, सिरमौर, मंडी अलग ईकाइयां बनीं। प्रथम नवंबर 1966 को विशाल हिमाचल बनने पर चंबा प्रदेश के बारह जिलों में एक जिला बना। इस जिले का मुख्यालय चंबा नगर बनाया गया।

वर्तमान : चंबा अचंभा

चंबा को अचंभा कहा जाता है। यह हिमाचल प्रदेश में सबसे सुंदर नगर है। यह नगर पर्वतीय वास्तुकला में पुरातन राजाओं के निर्देश पर बनाया और बसाया गया। महल, मंदिर, सोलह मुहल्लों और सुव्यवस्थित गलियों से सजे चंबा में घरों के बीच चौड़े आंगन हैं जो एक अच्छे नगर निर्माण के उदाहरण हैं। महल के ठीक सामने चौगान इस नगर की विशेषता है। यह चौगान एक मील लंबा और अस्सी गज चौड़ा हुआ करता था। कहा जाता है लोहड़ी की रात राजमहल से आग ले जाई जाती थी और चौदह स्थानों में जलाई जाती थी।

2001 की जनगणना के अनुसार हिमाचल प्रदेश में चार तरह के 57 नगर और उपनगर हैं। इनमें दस ब्रिटिश राज के दौरान बसाए गए थे, इकतीस स्वाधीनता के बाद नव निर्मित और चार स्वदेशी है। इन में बारह हिंदू राजधानियां (चंबा, मंडी, नाहन, सुंदरनगर, कुल्लू, कांगड़ा, नालागढ़, सुजानपुर टिहरा, रामपुर, अर्की, जुब्बल और नूरपुर) हैं जिनमें चंबा अति प्राचीन है।

चंपा या वर्तमान चंबा वैदिक नदी रावी के किनारे समुद्र तल से 966 मीटर एक ऊंचे प्लेटफॉर्म पर बसा है। नीचे रावी नदी बहती है। रावी की सायं सायं चंबा

वर्तमान चंबा चौगान तथा महल

चौगान से लगातार सुनाई पड़ती है। नगर के एक ओर पीर पंजाल तो दूसरी ओर धौलाधार की पर्वत शृंखलाएं हैं। ऊपर पर्वत और नीचे रावी नदी ने इसे प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान की है।

रावी या इरावती प्रदेश से बहने वाली पांच पौराणिक नदियों; व्यास, शतद्रु, चंद्रभागा और यमुना में एक है जिसका वर्णन पौराणिक साहित्य में मिलता है।

यह नगर शिमला से 435 किलोमीटर, पठानकोट से 122 किलोमीटर सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ है। जिला कांगड़ा के गग्गल एयरपोर्ट से यह 170 किलोमीटर दूर है। 2050 मीटर की ऊंचाई पर स्थित प्रसिद्ध पर्यटक स्थल डलहौजी यहां से 53 किलामीटर दूर है और अपने नैसर्गिक सौंदर्य के जानी जाने वाली खजियार झील (1800 मीटर) 24 किलोमीटर। डलहौजी के लिए एक सड़क मार्ग खजियार से हो कर है तो दूसरा मुख्य मार्ग से बणिखेत हो कर।

ब्रिटिश राज से पहले में चंबा आने जाने के लिए दाईं ओर से आते जाते थे। पठानकोट-भरमौर सड़क पर सस्पेंशन पुल बनने पर इधर से आवाजाही होने लगी।

पुरातन चंबा चौगान तथा महल

चंबा से पुरातन राजधानी ब्रह्मपुर या भरमौर यहां से लगभग पैंतालीस किलोमीटर है। भरमौर में शिखर शैली का शिव मंदिर (जिसे मणिमहेश मंदिर भी कहा जाता है) तथा चौरासी सिद्धों के स्थान हैं। इसी प्रांगण में लक्षणा देवी का मंदिर भी है। यहां यह बता देना उचित होगा कि इस मंदिर को ही मणिमहेश समझ लिया जाता है जब कि मणिमहेश के लिए पहला पड़ाव या बेस कैंप यहां से कुछ दूर हड़सर में है जहां तक सड़क मार्ग है। इसके बाद तेरह हजार फुट की बुलंदी पर स्थित मणिमहेश झील के लिए एकदम खड़ी और दुर्गम चढ़ाई है।

इस पुरातन राजधानी की स्थली व बनावट बहुत कुछ वैसी ही है जैसी कुल्लू, सुजानपुर टिहरा या नाहन की है। मुख्य प्रवेशद्वार और चौगान इन राजधानियों की विशेषता है। चंबा का मुख्य द्वार अब जिस स्थान पर है, शहर के लिए प्रवेश उससे ठीक दूसरी ओर बन गया है। बस रस्सों के पुल द्वारा दूसरी ओर प्रवेश करती

है। अब नए पुल का निर्माण भी हो गया है। पुराने मुख्यद्वार के साथ सुंदर चौगान है जो द्वार के सामने सड़क के कारण दो भागों में बंट गया है। यह सड़क सीधी लक्ष्मीनारायण मंदिर और महलों को जाती है। चौगान, जो कभी लंबा चौड़ा रहा होगा, सड़क के निचली ओर अभी सुरक्षित है। इसके अंतिम सिरे पर खुला मंच बना है। मंच से आगे सड़क पार कर सर्किट हाउस है। ऊपर का चौगान समाप्त सा हो गया है। सड़क के साथ दुकानें तथा खोखे हैं। दूसरी ओर भी बाजार है जो सर्किट हाऊस से होता हुआ बस स्टैंड तक जाता है। खोखों की लाइन में ही ऊपर की ओर अंतिम छोर पर 14 सितंबर, 1908 को स्थापित भूरिसिंह संग्रहालय है, जिसे नए भवन में ले जाया गया है जो पुरानी बिल्डिंग के साथ ही है।

चंबा जिला का मुख्यालय है जिस में पांगी और भरमौर का जनजातीय क्षेत्र भी शामिल है। यहां जिलाधीश, पुलिस अधीक्षक व अन्य जिला कार्यालय स्थापित हैं। सन् 1994 से जिला परिषद भी है।

मुख्यद्वार के साथ बाईं ओर पहला मंदिर है हरिराय मंदिर। यह भगवान विष्णु को समर्पित है। मंदिर में राजा सोम वर्मन द्वारा दिया गया ताम्रपत्र है। जिससे ज्ञात होता है कि मंदिर का निर्माण ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लक्ष्मण वर्मन द्वारा हुआ जो राज्यपरिवार का ही सदस्य था।

चौगान के दूसरी ओर बाजार के ऊपर चमेसणी माता का मंदिर है। शिखर शैली का यह मंदिर राजा साहिल वर्मन ने अपनी पुत्री चंपावती की याद में बनवाया।

महल के ऊपर एक पंक्ति में छह प्रस्तर मंदिर खड़े हैं जो इस समय चंबा की पहचान बने हुए हैं। इनमें तीन विष्णु को समर्पित है, तो तीन शिव को। सबसे पहला मंदिर लक्ष्मीनारायण का है और इसे ही मुख्य मंदिर माना जाता है। मंदिर

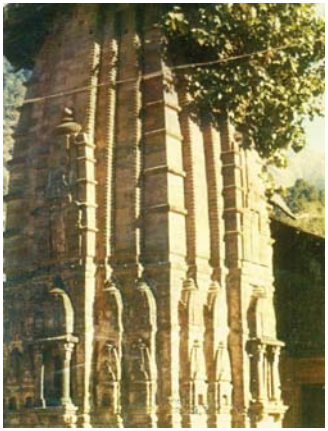

चंपावती मंदिर

साहिल वर्मन ने बनवाया। चंद्रगुप्त और त्रिमुख, जो शिव समर्पित हैं साहिल वर्मन द्वारा, गौरी शंकर मंदिर युगाकर वर्मन द्वारा बनवाया गया माना जाता है।

अखंड चंडी महल का निर्माण राजा उमेद सिंह (1748) ने करवाया। इस राजा ने रावी घाटी से आठ मील दूर राजनगर नाम देते हुए भी महल बनवाया। रंग महल की नींव भी उमेद सिंह द्वारा ही रखी गई। रंग मंहल अब नाम का महल है जिसमें सरकारी कार्यालय हैं। तथापि अखंड चंडी महल, रंग महल, जनाना महल अपनी वास्तुकला से आज भी आकर्षित करते हैं। इस समय अखंड चंडी महल में राजकीय महाविद्यालय है। जनाना महल बहुत संतुलित बना है। जनाना महल में अभी भी राजपरिवार के सदस्य रहते हैं। इन महलों की वास्तुकला में मुगल और ब्रिटिश शैली के दर्शन होते हैं। रंग महल में ब्रिटिश किलों की तरह कंगूरे बने हैं। कुछ प्रवेशद्वार आर्क शेप में हैं। महल के भीतर आकर्षक भित्ति चित्र भी थे।

साल घाटी में सड़क के किनारे वज्रेश्वरी मंदिर है। शिखर शैली में निर्मित यह मंदिर अपनी अद्वितीय काष्ठकला के लिए जाना जाता है।

चंबा नगर में बंसी गोपाल व सीताराम के ऐतिहासिक मंदिरों के साथ एक चर्च भी है जो सन् 1907 में बना। लगभग सन् 1870 में अंग्रेज शासकों द्वारा सर्किट हाउस, श्याम सिंह अस्पताल, क्लब और पुलिस स्टेशन तथा नगरपालिका भवनों का निर्माण भी किया गया।

चंबा इस समय चंबा रूमाल, चंबा चप्पल और मिंजर मेले के लिए प्रसिद्ध है। सन् 1908 में स्थापित भूरिसिंह संग्रहालय भी चंबा की शान है। यह संग्रहालय देश में सबसे पहले स्थापित चार संग्रहालयों में एक है।

कैसे हुई राजधानी और नगर की स्थापना

इतिहासकारों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओं की माने तो चंबा की पुरातन राजधानी राजा साहिल वर्मन (920 ई.) द्वारा बसाई गई।

कहा जाता है कि चंबा नाम राजा साहिल वर्मन ने अपनी पुत्री चंपावती के नाम पर रखा क्योंकि उसी की इच्छा से इस राजधानी की स्थली चुनी गई थी। दूसरा मत है कि यह नाम चंपक वृक्ष से पड़ा जो आज भी यहां होता है और अपनी सुगंध बिखेरता है।

चंबा (1860) : चित्रः सेमुअल बॉर्न

वोगल ने स्वीकार किया है कि चंबा की स्थापना साहिल वर्मन द्वारा किया गया, क्योंकि साहिल वर्मन के पुत्र तथा पौत्र द्वारा दो ताम्रपत्र राजधानी चंबा से जारी किए गए थे। इनमें चंबा को 'चंपक' लिखा गया है। चंबा की स्थापना दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में की गई होगी। वोगल ने प्रोफेसर डेविड की इस बात को नकारा है कि अंग की राजधानी चंपा का नाम रावी के किनारे वैसी चंपा नगरी के नाम पर रखा गया था। अंगदेश में चंपा मध्य देश की प्राचीनतम नगरियों में से एक था, जिसका संस्कृत साहित्य में प्रचुर वर्णन है। किंतु रावी के किनारे चंपा का उल्लेख दसवीं शताब्दी से पहले नहीं किया गया। चंपा का सर्वप्रथम उल्लेख राजतरंगिणी में कश्मीर के राजा अनंतदेव (1028-1063) के समय आता है। अतः जब रावी के किनारे चंबा की स्थापना हुई, अंग की चंपा समाप्त हो चुकी थी या महत्त्व खो चुकी थी।

राजा साहिल वर्मन ने 920 (ई.) में राज्य संभाला। चंबा गजेटियर तथा हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स में साहिल वर्मन के समय में कुल्लू के साथ लंबे युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में चंबा की सेना को 'गद्दी सेना' कहा गया है। साहिल वर्मन ने निचली रावी घाटी को जीत लिया। युद्ध में चर्पटनाथ, रानी तथा राजकुमारी भी साथ थे।

साहिल वर्मन, चौरासी सिद्ध और चंपा राजधानी

चंबा के इतिहास में साहिल वर्मन एक प्रतापी राजा हुआ। साहिल वर्मन ने रावी की निचली घाटी तक राज्य विस्तार किया। इस राजा के समय कुल्लू के साथ बारह वर्ष तक युद्ध चला और अंत में संधि हुई।

कथा है कि राजा के सिंहासनारूढ़ होने पर ब्रह्मपुर में चौरासी योगी आए। राजा ने उनका खूब आदर सत्कार किया। राजा उस समय निःसंतान था। उन्होंने राजा को दस पुत्र होने का वरदान दिया। पुत्र प्राप्ति तक राजा ने उनसे वहीं रहने का अनुरोध किया। समय आने पर राजा को दस पुत्र हुए। सब से बड़े पुत्र का नाम युगाकर वर्मन और पुत्री का नाम चंपावती रखा गया।

राजा ने रावी के निचले क्षेत्र तक जीत का अभियान चलाया। एक अभियान में राजा के साथ रानी, पुत्री चंपावती और योगी चरपटनाथ थे। वे चंबा के क्षेत्र में जा पहुंचे। यह क्षेत्र उस समय एक स्थानीय राणा के अधिकार में था जिसने इस भूमि को एक ब्राह्मण को उपहार में दे रखा था। चंपावती इस सुंदर स्थान को देख कर मुग्ध हो गई और राजा से यहीं राजधानी बनाने का अनुरोध किया।

ब्राह्मण से भूमि देने के लिए बातचीत की गई। ब्राह्मण भूमि को देने के लिए इस शर्त पर माना कि जब कभी कोई विवाह हो तो ब्राह्मण को आठ कली (ब्रह्मपुर की मुद्रा) दी जाए। राजा ने इस शर्त को स्वीकार कर भूमि ले ली और यहां राजधानी का निर्माण किया गया।

दूसरी कथा यह भी है इस स्थान पर चंपा के वृक्ष बहुतायत होते थे अतः नगरी का नाम चंपावती रखा गया।

साहिल वर्मन के पुत्र तथा पौत्र द्वारा जारी दो ताम्रपत्रों में इसे 'चंपक' कहा गया है। कल्हण की राजतरंगिनी में इसका नाम चंपापुरी है। 'चंपक' नाम से नगर का उल्लेख 1649 के लक्ष्मी नारायण मंदिर लेख में भी है। कुछ दूसरे दस्तावेजों में भी चंपक नाम लिखा गया है।

कालांतर में यह चंपा या चंपक से चंबा हो गया।

लोक गीतों में चंबा

लोकगीतों में चंबा का खूबसूरत वर्णन किया गया है। चंबा के गीत बहुत ही कर्णप्रिय हैं। ये गीत विभिन्न अवसरों पर गुनगुनाए जाते हैं। एक मधुर गीत के बोलों में चंबा का वर्णन किया गया है कि चंबा नदी के वार (इस ओर) है कि उस ओर। अंत में कहा जाता है कि चंबा दो नदियों : रावी और साल के बीच में है। गाने की पंक्तियों में घोड़ी के सवार राजा के उल्लेख के साथ प्रेमी आग्रह करता है कि वह उसे मोचड़ू (पैरों में पहनने के) की जोड़ी देगा, सिर के लिए सालू (ओढ़नी) देगा।

चंबा वार कि नदिया पार

चंबा वार कि नदियां पार, मेरी लाल रंगिए।
ओ राजा घोड़ी दा सवार, मेरी लाल रंगिए।
पैरां देला मोचड़ुआं दे जोड़, मेरी लाल रंगिए।
चंबा वार की नदियां पार, मेरी लाल रंगिए।
ओ राजा घोड़ी दा सवार, मेरी लाल रंगिए।
सिरा देला सालड़ुआं दे जोड़, मेरी लाल रंगिए।
चंबा वार कि नदिया पार, मेरी लाल रंगिए।
ओ राजा घोड़ी दा सवार, मेरी लाल रंगिए।
ठंडी-ठंडी सड़कां दे मोड़, मेरी लाल रंगिए।
चंबा वार कि नदिया पार, मेरी लाल रंगिए।
कि राजा घोड़ी दा सवार, मेरी लाल रंगिए।
चंबा दो नदियां विचकार, इक रावी ते दूजी साल
मेरी लाल रंगिए।

दूसरे गीत में उल्लेख है कि गोरी (नायिका) का मन चंबे की धारों यानी पहाड़ियों में बस गया है। घर घर में टिकलू लगाया जाता है, घर घर में बिंदलू है, घर घर में बांकी नारें हैं। चंबे की धारें हरी भरी हैं, जहां ठंडी फुहारें पड़ती हैं जिससे सारी ओढनी भीग जाती है। घर घर चकरू हैं, घर घर बकरू हैं, घर घर में मौज बहारां हैं। चंबे की धारों में नींबू, नारंगी और अनार बिकता है। घर घर में चरखे हैं, घर घर

पूणियां हैं। घर घर कातने में प्रवीण नारियां हैं। घर घर में ढोल नगाड़े बजते हैं, घर घर में गायन में प्रवीण नारियां हैं :

चंबे दियां धारां

गोरी दा मन लगेया चंबे दीयां धारां।
घर-घर टिकलू घर-घर बिंदलू,
घर-घर बांकियां नारां।
गोरी दा मन।
चंबे दीयां धारां हरियां ते भरियां,
ठंडियां पौण फुहारां।
गोरी दा मन।
चंबे दीयां धारां की-की बिकदा,
निंबू नरंगी अनारां।
गोरी दा मन।
चंबे दियां धारां पौण फुहारां
ओढणू भिज्जी जांदा सारा।
घर घर चकरू घर घर बकरू
घर घर मौज बहारां।
घर घर चरखे घर घर पूणियां
घर घर नारां कताह्रां।
घर घर बजदे ढोल नगारे
घर घर नारां गताह्रां
गोरी दा चित्त लग्गेया चंबे दीयां धारां।

ऐसा ही एक गीत चंबा के साथ कांगड़ा में भी गाया जाता है :

चंबे दियां धारां, पौह्न फुहारां
ओ दूरे दिया बासिया, हुण घरैं आई जा।
बद्दल़ां घिरी घिरी हार बणाया
रल़ी मिल़ी सखियां झूला पाया।
ओ दूरे दिया बासिया ।

पंखेरूआं ता पंच्छियां ने कितड़े संदेसे भेजे
बिजली दी चम-चम हिली जा कलेजे।
ओ दूरे दिया बासिया, हुण घरै आई जा।

एक गीत में चंबा को हरा भरा बताया गया है। हे मेरे रांझणा! चंबे की डालियां भी हरी भरी हैं। बातें (प्रेम की) आहिस्ता आहिस्ता करना, ससुर तो सो गया परंतु सास अभी जाग रही है। प्रेम की बातें हौले से करना जेठ तो सो गया है, जेठानी जाग रही है :

चंबा हरेया भरेया
हाय बो चंबा हरेया भरेया
हरेया भरेया रांझणा हो
हरियां चंबे दियां डालि़यां हो
हाय बो चंबां
हाय बो गल्लां हौलें करयां
हौले करयां रांझणा हो
सौहरा सुता, वे सस्स जागदी हो
हाय बो चंबा ।
हाय बो गल्लां हौलें करयां
हौले करयां रांझणा हो
जेठ सुता, वे जठानी जागदी हो
हाय बो चंबां।

एक अन्य गीत में उल्लेख है कि मेरे चंबे की धारें (पहाड़ियां) घिर घिर कर आती हैं। रावी के किनारे हौले हौले चलना, रावी का किनारा ठंडा है। पीपल की छांव में बैठ लेना, तुम्हारे साथ सारा दिन बिताना है। गहरी गहरी घाटियां हैं, टेढ़ी मेढ़ी नदियां हैं, चंबा का शहर प्यारा है।

घिर घिर आंवदियां

घिर-घिर आंवदियां ओ मेरे चंबे दीयां, ओ मेरे चंबे दीयां,
ओ मेरे चंबे दीयां धारां।
हौले-हौले चलणा रावी दे कंडे-कंडे
ठंडा रावी दा किनारा।

घिर-घिर आंवदियां।
बही लैणा पिपलू दी ठंडिया छांवां
कन्ने कटणा दिन सारा।
घिर-घिर आंवदियां ।
गैहरी-गैहरी घाटियां, टेढ़ी-मेढ़ी नदियां
चंबा सैहर पियारा।
घिर-घिर आंवदियां।

त्रासद रही चंपा की स्थापना

त्रासद कथा : एक

चंपा में राजधानी की स्थापना और नामकरण से संबंधित एक कथा है जो बहुत दुखद और त्रासद है। चंपावती धार्मिक प्रवृत्ति की राजकुमारी थी। वह ज्ञान चर्चा के लिए एक साधु के पास जाती थी। लोगों ने राजा से चंपावती के साधु के साथ संबंधों की शिकायत की। राजा को पुत्री के चरित्र पर संदेह हो गया। अगली बार जब राजकुमारी साधु से मिलने गई तो राजा ने तलवार लिए उसका पीछा किया। राजा ने भीतर जा कर देखा तो वहां कुछ नहीं दिखई दिया। उसी समय एक आवाज सुनाई दी : 'तुम्हें अपनी पुत्री पर भ्रम हो गया है अतः सजा के तौर तुम से तुम्हारी पुत्री छीन ली जाती है।' राजा को आदेश दिया गया कि वह उसी स्थान पर मंदिर का निर्माण करे, जहां खड़ा है। राजा ने वहां मंदिर का निर्माण किया जिसका नाम राजकुमारी के नाम पर चंपावती मंदिर पड़ा। इसे अब स्थानीय बोली में चमेसणी मंदिर भी कहा जाता है। यहां प्रथम वैशाख से इक्कीसवें वैशाख तक मेला लगने लगा। राजा को इस अवसर पर चंपावती मंदिर से आरंभ कर नगर के हर मंदिर में जाना पड़ता था।

साहिलवर्मन ने चंबा में कई मंदिर बनवाए। कहा जाता है राजा और सिद्ध चरपटनाथ नदी में नहा रहे थे तो उन्हें पानी में दो शिव प्रतिमाएं मिलीं। अतः चंद्रगुप्त तथा कामेश्वर मंदिरों का निर्माण किया गया।

त्रासद कथा : दो

एक दूसरी कथा भी उतनी ही दुखद है। नगर के मध्य में स्थित श्रीलक्ष्मीनारायण मंदिर एक महत्त्वपूर्ण मंदिर है। इस मंदिर के निर्माण संबंधी कुछ कथाएं जुड़ी हुई हैं। कहा जाता है मंदिर के लिए मूर्ति निर्माण हेतु संगमरमर लाने के लिए राजा ने अपने नौ पुत्रों को विंध्याचल पर्वतों की ओर भेजा। उन्हें संगमरमर तो मिल गया किंतु जब वे उसे काटने लगे तो पत्थर के नीचे मेढक दिखा। अतः यह पत्थर मुख्य मूर्ति बनाए जाने के काबिल नहीं समझा गया। इससे त्रिमुख शिव, गणपति (जो अब चंद्रगुप्त मंदिर में है), लक्ष्मी मूर्तियां बनाई गईं। राजकुमारों को पुनः पत्थर लाने भेजा गया। दुर्भाग्य से रास्ते में ही उन्हें डाकुओं ने मार दिया। यह दुखद सूचना मिलने पर राजा ने युगाकर वर्मन को भेजा। युगाकर वर्मन पर भी डाकुओं ने हमला किया किंतु वह संयासी गोसाईंयों की सहायता से उन्हें भगाने में सफल रहा और संगमरमर की शिला

ले आया। इस शिला से विष्णु की मूर्ति बनाई गई।

चंबा के सिक्के को चकली कहा जाता था। पांच चकली का एक आना होता था। साहिल वर्मन ने इस सिक्के पर योगी का फटा हुआ कान बनवाया जो चरपटनाथ के सम्मान में था। बाद में राजाओं ने इसमें विष्णुपाद जोड़ा। राजा अस्त वर्मन द्वारा एक बार चांदी का सिक्का भी चलाया गया।

साहिल वर्मन चंबा का एक प्रतापी राजा हुआ जिसका कार्यकाल अनेक घटनाओं से भरा हुआ था। दो ताम्रपत्रों में इस राजा का उल्लेख है। ताम्रपत्र में उल्लेख यह है कि साहिल वर्मन ने कीर सेनाओं के लिए ज्वलंत अग्नि के समान रूप धारण किया। राजा की संधियों को त्रिगर्त नरेश ने भी माना। कुल्लूत का राजा उसे श्रद्धा से नमन करने आया। वह सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र गया।

अपने अंतिम दिनों में साहिल वर्मन चंपावती में नहीं रहा। यहां हो रही त्रासदियों से त्रस्त हो कर वह अपने पैतृक स्थान के प्रति आकर्षित हुआ और अपने पुत्र युगाकर वर्मन को राज्य सौंप ब्रह्मपुर चला गया। वहां वह साधु बन कर योगी चरपटनाथ तथा अन्य साधुओं के साथ रहा।

इन सभी मंदिरों को जागीरें दी गईं किंतु इस संबंध में कोई दस्तावेज अब उपलब्ध नहीं हैं। साहिल वर्मन द्वारा चंपा में महल का निर्माण भी करवाया गया। यह महल कहां था, यह ज्ञात नहीं है।

त्रासद कथा : तीन

तीसरी कथा और भी अधिक करुणाजनक है। नगर में पानी की कोई व्यवस्था नहीं थी। राजा के बहुत प्रयत्न करने पर भी व्यवस्था नहीं हो पाई। अंत में उसने नगर के पीछे से सरोता नहर में पानी लाया। पानी उस नहर में नहीं आया और इसे किसी दैवी शक्ति का प्रकोप माना गया। ब्राह्मणों से सलाह करने पर मालूम हुआ कि यदि राजा, रानी या पुत्र की बलि दे तभी पानी आएगा। दूसरे मत के अनुसार राजा को स्वप्न आया कि यदि वह अपने पुत्र की बलि दे तभी पानी आएगा। ऐसा जानने पर रानी ने पुत्र की अपेक्षा अपने को बलि के लिए प्रस्तुत किया। रानी ने सती वेश धारण कर प्रस्थान किया और नहर के मूल स्थान में दफन होकर बलिदान दिया। कहा जाता है कि रानी के दफन होते ही पानी बहने लगा। इस हृदयग्राही प्रसंग का वर्णन आज भी लोकगीतों में किया जाता है।

रानी के बलि स्थान पर मंदिर बनाया गया और हर वर्ष वहां मेला लगने लगा। आज भी पंद्रह चैत्र से पहली वैशाख तक मेला लगता है और इसे रानी सूही मेला कहा जाता है।

साहिल वर्मन के उतराधिकारी पुत्र युगाकर वर्मन, ने एक ताम्रपत्र पर अपनी माता के नाम 'नीनादेव' का उल्लेख किया है, जो संभवतः यहां की रानी थी। सूही को लंकेश्वरी भी कहा जाता है। रानी सूही की समाधि राजा अजीतसिंह (1794-1808) की रानी शारदा ने बनवाई।

भरमौर मंदिर परिसर

साहिल वर्मन के समय का कोई ताम्रपत्र नहीं मिलता है, संभवतः इस कारण लोकश्रुतियां अधिक मात्रा में प्रचलित हैं। साहिल वर्मन ने कीर, त्रिगर्त और कुल्लू को भी हराया ओर इलाके छीने। ब्रह्मपुर के नीचे की ओर राज्य विस्तार भी चंबा में राजधानी बनाने का कारण रहा होगा।

लक्ष्मीनारायण मंदिर

चंबा राजमहल के उत्तर में लक्ष्मीनारायण मंदिर वास्तव में छह मंदिरों का समूह है जिनमें तीन मंदिर विष्णु को और तीन शिव को समर्पित है। शिखर शैली में निर्मित ये मंदिर नगर की शोभा है। गुप्त शैली का प्रभाव लिए ये मंदिर गूर्जर प्रतिहार शैली में है। प्रतिहार शैली में पांच अंगः वेदी बन्ध, संधा, शुकनासिका, कंठ और शिखर यहां विद्यमान है।

सभी मंदिर एक पंक्ति में स्थित है। उत्तर से दक्षिण की ओर लें तो क्रमशः लक्ष्मीनारायण, राधाकृष्ण, चंद्रगुप्त महादेव, गौरीशंकर, त्र्यम्बकेश्वर तथा लक्ष्मीदामोदर स्थित है। मंदिरों के शिखर ऊपर से छतरीनुमा हैं। मंदिरों के चारों ओर गवाक्ष हैं जिन में पाषाण देवमूर्तियां स्थापित की गई हैं।

लक्ष्मीनारायण मंदिर

लक्ष्मीनारायण मंदिर सीधा भूमि पर खड़ा किया गया है अर्थात् इसके नीचे कोई आधार या नींव नहीं खोदा गया। पत्थरों के ऊपर कलात्मक नक्काशी की गई है। इनमें फूल, कुंभ, कलश तथा देवी देवता बनाए गए हैं।

लक्ष्मीनारायण की मुख्य प्रतिमा के ऊपर चांदी के तोरण में दशावतार की आकृतियां सुनार द्वारा बनाई गई हैं। तोरण में किनारे पर संस्कृत में एक लेख है जिसमें चित्रकार लहरू व महेशु, स्वर्णकार यीरजू, किरपू; ताम्रकार जैराम, किरपू के नाम अंकित हैं। इसी में लुद्र मेहता, पंडित दयारा; पुजारी लक्षु, ढीचू, किरपू, कुठियाला शिवराम आदि के नाम भी उत्कीर्ण किए गए है। यह तोरण को मंदिर में राजा दलेल सिंह (1735-1747) ने सन् 1747 में अपने राज्य के अंतिम वर्ष में स्थापित कियाः

'उं। स्वस्ति श्री मान्नपतिवर बिक्रमादित्य संवत्सरे
1804 शलिवाहन शाके 1669 श्री मान्नृपतिवर
दलेल सिंह राज्य मुक्त वर्षगणे 13 दक्षिणेयायने
वर्षा ऋतो श्रावणे कृणैकादश्यां बुधे मृगशिर
नाम नक्षत्रै श्री श्री श्री लक्ष्मी नारायण प्रीत्यर्थ
हिरण्यं संस्कृत रौप्यमय तोरणं समर्प्यितं
श्री मान्दलेल सिंहस्य राज्ये तत्र राज्य सचि-
वत्वं कुड्याल जैमलस्य श्री लक्ष्मी नारायणस्य
सचिवत्वं मनसूदेडाख्य रम इमै कारक
चित्रकारादयः चित्रकारौ लैहरू महेशौ
स्वर्णकारौ यीरजू किरपू ताम्रकारौ जैराम किरपू
तत्रधिकारिणः होलालु दुर्गादास पोटरू
भगवान सोनि वाणिया लुद्र मेहता पंडित दया राम
पुज्याले लक्षु ढीचू कीरपू पाहरी प्रसादु अबलू हरिया
सन्तोखू इन्हादे पाले चाढ़या, कोठयाला शिवराम
शास्त्र संवत 23 श्रावण प्र. 21 लिख्या शुभम्।'

मंदिर में प्रातःकाल और सायंकाल पूजा-अर्चना की जाती है। दिन में भोग लगता है। भोग में चंबा की धाम बनाई जाती है जिसमें स्थानीय व्यंजन मदरा, उड़द की दाल, मूंगी की दाल, कढ़ी, खट्टा, चावल तथा मीठे चावल बनाए जाते हैं। यह भोग पुजारियों तथा सेवादारों में बांटा जाता है।

श्रीलक्ष्मीनारायण मंदिर केंद्रिय पुरात्तव विभाग के अधीन केंद्र संरक्षित स्मारक घोषित है। मंदिर की देखरेख केंद्रिय पुरात्तव विभाग करता है।

कुल्लू तथा मंडी की भांति चंबा में भी पहले नाथ जोगियों की पूजा जाती थी, बाद में राजा वै ष्णव हुए। अतः कुल्लू के दशहरे और मंडी के शिवरारत्रि की तरह

शिव पूजा के उत्सव वैष्णव मंदिरों से ही आरंभ होते हैं।

मिंजर मेले में सबसे पहले मिंजर पुष्पपिका इसी मंदिर में चढ़ाई जाती है। प्रसिद्ध मणिमहेश यात्रा का प्रारंभ भी इसी मंदिर से होता है।

विष्णु प्रतिमा

हरिराय मंदिर

चंबा चौगान में पुरातन गेट के पास ही हरिराय मंदिर स्थित है। बाहर से देखने में साधारण किंतु भीतर स्थित विष्णु चतुर्मूर्ति के लिए यह प्रसिद्ध है। इस मंदिर का निर्माण ग्यारहवीं शताब्दी में राजपरिवार के एक सदस्य लक्ष्मण वर्मन द्वारा हुआ। मंदिर में राजा सोम वर्मन (1060-1080) द्वारा दिया गया ताम्रपत्र है। सोम वर्मन ने इस मंदिर को भूमि दान में दी। सोम वर्मन का नाम वंशावली में नहीं मिलता है। संभवतः कश्मीर के राजा अनंतदेव ने पूर्व शासक सालवाहन की मृत्यु के बाद इसे बनाया हो। इस राजा का नाम दो ताम्रपत्रों में आता है। पहला ताम्रपत्र राज्यकाल के सातवें वर्ष में जारी किया गया जो सूर्यग्रहण में भूमिदान संबंधी है। इसमें पिता सालवाहन के हस्ताक्षर हैं। दूसरा ताम्रपत्र शिव तथा विष्णु के भूमिदान संबंधी है। इस में सोम वर्मन तथा भाई अस्त वर्मन दोनों के हस्ताक्षर हैं।

मंदिर के भीतर विष्णु चतुर्मूर्ति कला की दृष्टि से अद्वितीय है।

हरिराय मंदिर

इस मूर्ति की ओर कला समीक्षकों का ध्यान तब गया जब यह चोरी हो गई और वह मुंबई में मिली। लगभग 358 किलो भारी यह मूर्ति छह सात मई 1971 की रात चोरी हुई। 25 जून 1971 को इसे मझगांव, बंबई में ढूंढ़ निकाला गया। 8 जुलाई को इसे पुनः चंबा के मंदिर में स्थापित कर दिया गया। इस मूर्ति का निर्माण

काल विभिन्न विद्वानों द्वारा 400 ई. से 1200 ई. के बीच माना गया है। मंदिर के निर्माण की तिथि बाद की भी हो सकती है।

विष्णु का यह रूप चतुर्मूर्ति या वैकुण्ठ कहलाता है। उत्तर प्रदेश में ऐसी मूर्तियां गुप्तकाल या इससे से भी पहले की मिली हैं। यह मूर्ति फ़तेहपुर (कांगड़ा) में मिली एकमुखी विष्णु मूर्ति से मिलती है। मूर्ति का पुष्ट वक्षस्थल, मुकुट, कुंडल, लंबी वैजंयतीमाल आकर्षक और कलात्मक ढंग से बनाई गई है। आंखों में चांदी का इस्तेमाल है। चेहरा सौम्य है। दक्षिण की ओर का मुख नृसिंह का है, पश्चिमी मुख कपिलमुनि का है, तीसरा मुख वाराह का और सामने का विष्णु का। सामने की चार भुजाओं में से दो में कमल तथा शंख है। दो हाथ गदा देवी तथा भू देवी पर हैं जिनकी प्रतिमाएं पेडस्टल के ऊपर खड़ी हैं। भूदेवी की मूर्ति आकर्षक बनाई गई है और आभूषणों से सुसज्जित है जबकि गदा देवी अपेक्षाकृत मोटी कमर तथा कम आभूषणों वाली हैं। दोनों के पैरों के बीच महाभूत की छोटी प्रतिमा है।

हरि या वासुदेव के हाथ में शंख आकाश, चक्र वायु, गदा तेज, कमल जल का प्रतीक है। पांवों के बीच महाभूत है। मूर्ति संतुलित और वस्त्राभूषणों से सुसज्जित है।

चतुर्मूर्ति विष्णु प्रतिमा

चंबा कलम

कांगड़ा कलम विश्व प्रसिद्ध है। कांगड़ा कलम के चित्र देश में ही नहीं अपितु विदेशों के संग्रहालयों में भी अमूल्य थाती बने हुए हैं। इस कलम को अंग्रेजी में 'मिनिएचर पेंटिंग' कहा गया क्योंकि इस विधा पर अधिकांश किताबें अंग्रेजी में ही उपलब्ध है। 'मिनिएचर' का अर्थ लघु न हो कर अतिसूक्ष्म है। महीन कारीगरी का कमाल ही इस कला की विशेषता रही है। पेड़ का एक-एक पत्ता, पत्ते का एक-एक रेशा, सिर का एक एक बाल तक चित्रित करना इस कला की विशेषता रही है। इस उत्कृष्ट चित्रकारी को मेग्निफाईंग ग्लास से ही देखा जा सकता है।

हिंदी में इस मिनिएचर का अनुवाद लघु चित्रकला किया गया है जो सही प्रतीत नहीं होता।

कलाकारों ने प्राकृतिक सौंदर्य, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, घर-द्वार का चित्रण किया। भानुदत्त कृत *रंसमंजरी*, जयदेव का *गीत गोविंद*, *बिहारी सतसई*, नायिका भेद, बारामासा, रामायण, रसिक प्रिया आदि अनेक विषयों को चित्रित किया गया। पौराणिक आख्यानों पर भी चित्र बनाए गए। राजाओं के पोट्रेट भी बनाए गए।

इन चित्रों में पहले रेखांकन किया जाता था। रेखांकन के बाद एक मानक रेखांकन को सुरक्षित रखा जाता और उसी से और चित्र बनाए जाते। इसी कारण

गीत गोविंद (नैणसुख के बाद)

एक ही चित्र की अनेक प्रतिलिपियां मिलती हैं। चित्रों में प्रयोग होने वाले रंग चित्रकार स्वयं बनाते थे जो कई वर्षों तक ज्यों के त्यों बने रहते। ये रंग फूल, फल, वनस्पतियों और खनिजों से तैयार किए जाते थे। वनस्पति में नील, महावर, खनिजों में गेरू, हरमुंजी, संगरफ, हड़ताल, लाजवर और रासायनिकों में काजल, सफेदा, सिंदूर का प्रयोग किया जाता। इस कलम में लाल, हरा, नीला, पीला, काला, सुनहरी सभी रंगों का प्रयोग किया गया है। इनके रेखांकन तथा रंग संयोजन से कलम की पहचान होती है कि यह कहां का चित्र है।

स्नानागार में नायिका

रंग संयोजन गिलहरी की पूंछ से बने ब्रशों से किया जाता था। कभी कभी सूक्ष्म संयोजन के लिए एक बाल के ब्रश का प्रयोग भी किया जाता था।

कांगड़ा घाटी के गुलेर से यह कलम नूरपुर, चंबा, कुल्लू, मंडी, बिलासपुर और बाघल तक फैली। रंगों के प्रयोग और आकृतियों की बनावट से ही कलाशैलियों को पहचाना जाता रहा है। बसोहली कलम के रंगों में चटकीला लाल, नीला और पीला अधिक प्रयोग किया गया है। कांगड़ा कलम में रगों के मिश्रण से बनने वाले रंगों का ज्यादा प्रयोग हुआ। इस कला में आकृतियों में संतुलन भी देखा जा सकता है।

कला का प्रारंभ

कार्ल खंडालवाला के अनुसार चंबा में बसोहली शैली में चित्रकारी राजा उमेद सिंह (1748-1764) के समय आरंभ हुई। किंतु यह कलम इससे पहले से प्रचलित थी। इसका आरंभ चंबा के राजा पृथ्वी सिंह (1641-1664) के समय में ही हो गया था।

जिस चित्र पर चित्रकार का नाम अंकित हो, ऐसा सबसे पुराना चित्र बसोहली शैली में मिलता है। बसोहली के राजा कृपाल पाल के लिए देवीदास ने

संस्कृत के काव्य रसमंजरी पर एक चित्र शृंखला तैयार की। इसकी तिथि 1695 ई. मानी गई है। डॉ. बी.एन.गोस्वामी ने कुरुक्षेत्र के पंडों की बही के अनुसार यह वंशावली निकाली : 'ञ ाण चतेरे गोलू निकू ठाकरू देवीदास के बेटे कृपाली के पोते रत्तो के प्रपौते।'

डॉ. बी.एन. गोस्वामी के अनुसार चंबा के कलाकार गुजरात से आए। ये मणिकंठ के गोत्र से थे। हरिद्वार में की गई प्रविष्टियों के अनुसार ये गुजराती चितरे सत्रहवीं शाताब्दी से पहले आए क्योंकि सन् 1670 तथा 1676 में इन्होंने अपने को चंबयाली कहा। जब नूरपुर के राजा वासुदेव (1580-1613) ने नई राजधानी में किला

काशी उपद्रव (पुरख्)

तथा मंदिर बनवाए, उस समय कई शिल्पी तथा कलाकार परिवार नूरपुर आए। ये लोग गुजरात के थे। डॉ. वी.सी. ओहरी के अनुसार वहां से कलाकार चंबा आए। नूरपुर और चंबा के राजाओं में आपसी संबंध भी रहे हैं और पड़ोसी राज्य होने के कारण विरोध भी रहा। अतः संभव है नूरपुर से कुछ कलाकार चंबा आ बसे हों।

प्रमुख चित्रकार

यूं तो चित्रकार गुलेर, कांगड़ा, बिलासपुर, चंबा में एक राज्य से दूसरे राज्य में जाते रहते थे। यदि पिता एक राज्य में था तो पुत्र दूसरे में। अतः सभी कलाकारों के बनाए चित्र इन राज्यों में मिलते हैं। पंडित सेऊ के प्रसिद्ध कलाकार परिवार ने भी

चंबा में कलाकृतियां बनाईं। कुछ चित्र एक राज्य से दूसरे में भेंट के रूप में तथा विवाह में दहेज स्वरूप दिए जाते थे।

इन चित्रकारों को चतरेरे या तर षाण (तरखाण) चतरेरे कहा गया है। किंतु पंडित सेऊ को ऐसा नहीं कहा गया। पंडित सेऊ को 'पंडित सेऊ मुसव्वर' कहा गया। सेऊ को पंडित परिवार बताया गया जिसके साथ फारसी में मुसव्वर लिखा गया। ये लोग रैणा पंडित थे। यद्यपि कहीं इन्हें तर षाण भी कहा गया। गुलेर के पंडित सेऊ का एक चित्र चंडीगढ़ संग्रहालय में है जिस पर 'पंडित सेऊ मुसबर' लिखा है। सेऊ के दो पुत्र माणकू और नैणसुख थे। नैणसुख ने जसरोटा में राजा बलवंत सिंह के पास काम किया और राजा के पोट्रेट बनाए। नैणसुख के चार पुत्र हुएः कामा, गोधू, निक्का और रांझा। रांझा के दो पुत्र गुरसहाय और सुखदयाल भी चित्रकार थे।

निक्का द्वारा निर्मित चित्र भूरिसिंह संग्रहालय चंबा तथा चंडीगढ़ संग्रहालय में उपलब्ध हैं। निक्का तथा रांझा ने चंबा के राजा राजसिंह (1764-1794) के संरक्षण में काम किया। राजा राजसिंह ने रिहलू क्षेत्र में गग्गल रजोल में एक जागीर नैणसुख परिवार को दी। यह भूमि बाद में निक्का के नाम हो गई।

डॉ. वी.सी. ओहरी ने '*नल दमयंती*', '*उषा अनिरुद्ध*', '*रुक्मिणी मंगल*' चित्रों को निक्का तथा रांझा का सयुंक्त काम बताया है। किंतु डॉ. बी.एन. गोस्वामी ने '*उषा अनिरुद्ध*', '*नल दमयंती*' को रांझा द्वारा निर्मित माना है।

नृत्य देखते हुए युवा राजा राजसिंह चित्र के पीछे रामसहाय लिखा मिलता है। रामसहाय को रांझा भी माना गया है। इस चित्र के बाद रामायण के 707 रेखांकनों में रांझा नाम मिलता है जो भारत कला भवन बनारस में हैं। डॉ. गोस्वामी ने इन रेखांकनों का चित्रकार रांझा को माना है। कुछ विद्वान मानते हैं कि ये रांझा के शिष्य सुदर्शन ने बनाए। इन चित्रों की पुष्पिका पर 1816 ई. लिखा है।

उषा अनिरुद्ध और *नल दमयन्ती* चित्र माला रांझा की प्रतिभा को दर्शाती है। इनमें *सुदामा के पांव धोते कृष्ण, राजा नल का दरबार* चित्र उल्लेखनीय हैं।

रांझा के पुत्र गुरसहाय ने बसोहली के राजा अमृतपाल के संरक्षण में कार्य किया। गुरसहाय ने अपने को 'श्री रांझे दा चाकर पुत्र गुरसहाय' लिखा। गुरसहाय ने कामशास्त्र पर भी चित्र बनाए।

खुशाला के बाद सिखणू का नाम आता है। सिखणू के पुत्र चैतू की विधवा सन् 1894 में चल बसी अतः यह शाखा समाप्त हो गई। इसी प्रकार नैणसुख की पीढ़ी में चंदूलाल रैणा अंतिम चित्रकार थे जिनकी 5 मई 1994 को मृत्यु हो चुकी है। इनके पुत्र अनिल रैणा कांगड़ा कला संग्रहालय धर्मशाला में कार्यरत हैं।

कलाकार माणकू

इसी तरह एक चित्रकार सजनू कांगड़ा में समलोटी के पास उस्तेढ़ का वासी था जो मंडी चला गया। एक कलाकार पुरखू भी समलोटी का ही वासी था।

माणकू और नैणसुख के वंशजों ने भी इन्हीं पहाड़ी राज्यों में काम किया। निक्का के पौत्र अत्रा ने एक कलाकृति *नरक का द्वार* बनाई जिस पर अंकित तिथि 1860 ई. है।

इस आलेख में सात चित्रकारों का नाम दिया गया है :

''चंबे दी राजसी दे कदीम नौकर, जागीर रिल्लू परगना रज़ौली ग्राम गगल रेहणे वाले गुलेरिये चित्रेरे, रांझा, नरेण, निक्का, गोधू, छज्जू, अत्रा, सौदागर। मेहते स्यामे की अत्रे अपू लिखी दिता सं. 36।''

नैणसुख (सेल्फ पोट्रेट)

अपने मूल स्थान गुलेर के कारण इन्होंने अपने को 'गुलेरिये चित्रेरे' कहा। यद्यपि चंबा के राजा राज सिंह ने रिहलू क्षेत्र में नैणसुख परिवार को जागीर दी अतः इन सब को चंबा राज्य के कदीम नौकर कहा गया। यह भी स्पष्ट है कि ये सातों चंबा राज्य के संरक्षण में कार्य कर रहे थे।

इन में से गोधू के दो पुत्रों में से सुलतानू के नाम का एक चित्र मिलता है। निक्का के तीन पुत्र थे--हरखू, गोकल और छज्जू। ये तीनों चित्रकार थे। इन्हें सिख शासकों ने मुआफियां दीं। सन् 1833 में निक्का की मृत्यु के बाद ये तीनों सिख शासकों के पास चले गए।

कुछ महत्त्वपूर्ण चित्र

चंबा का सबसे पुरातन चित्र राजा बलभद्र वर्मन (1589-1613) के समय का माना जाता है। यह राज्य संग्रहालय शिमला में है जिसे नूरपुर के वजीर करतार सिंह द्वारा दिया गया है। यह चित्र दूसरे चित्रों के साथ जल गया किंतु इसका कुछ भाग

वजीर करतार सिंह के संग्रह से

बचा हुआ है। इस चित्र को 1630-40 के बीच का माना गया है। राजा बलभद्र वर्मन बड़ा दानी था जिसने सारी संपत्ति दान में लुटा दी। इसी कारण राजा को हटा दिया गया और उसके पुत्र जनार्दन को राज्य सौंपा गया। बलभद्र वर्मन इतना दानी था कि दान किए बिना अन्न जल ग्रहण नहीं करता था। राज्य लुटा देने पर उसे एक अलग घर और जागीर दी गई जिसे उसने घर सहित दान कर दिया और खुद बाहर रहने लगा। चित्र के ऊपर टाकरी में 'श्री बलि कर्ण' लिखा है। राजा के साथ उसका भाई विशंभर बैठा दिखाया गया है।

डॉ. वी.सी. ओहरी के अनुसार यह कलाकृति सन् 1640 के आसपास बनाई गई होगी। राजा के भाई विशंभर की मृत्यु हचिसन वोगल के अनुसार 1623

में हो गई जबकि एक काव्य के अनुसार सन् 1626 तक वह जीवित था। जनार्दन को नूरपुर के राजा जगत सिंह ने महल में ही मार दिया और बलभद्र वर्मन पुनः राजा बना। इस बीच जनार्दन के शिशु पुत्र को धाय बाटलू मंडी ले गई क्योंकि उसे चाचा विशंभर से ख़तरा था।

राजा पृथ्वी सिंह (1641-1664) के समय से चंबा में कलाकृतियां बनना आरंभ हो गईं थीं। शाहजहां के समय 'शाहजहां दर्शन' नाम से एक चित्र है जिसमें शाहजहां की सफेद दाढ़ी दिखाई गई है। राजा पृथ्वी सिंह लगभग नौ बार मुगल दरबार गया।

जालपा देवी का एक चित्र गुजराती कलाकार(चंबा) हीरालाल के पास था। इस चित्र में अष्टभुजा देवी को चित्रित किया गया है और टाकरी में जालपा लिखा है। देवी के सिर पर मुकुट सुशोभित है। देवी आठों भुजाओं में कमल तथा आयुद्ध लिए हुए है। नूरपुर कलम के निकट का यह चित्र सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का माना गया है।

चंबा से एन.सी. मेहता संग्रह में गोवर्धन पर्वत उठाए कृष्ण का एक चित्र सत्रहवीं शताब्दी का माना गया जिस पर मुगल शैली का प्रभाव है। कार्ल खंडालवाला ने इस चित्र को 1760 के आसपास का माना।

राष्ट्रीय संग्रहालय में राजा चतर सिंह द्वारा धार्मिक प्रवचन सुनते हुए एक चित्र है जो 1665-80 के बीच का माना गया है। राजा चतर सिंह का समय 1664-1690 था। यद्यपि चित्र के ऊपर टाकरी में राजा फतेहशाह (गढ़वाल) लिखा

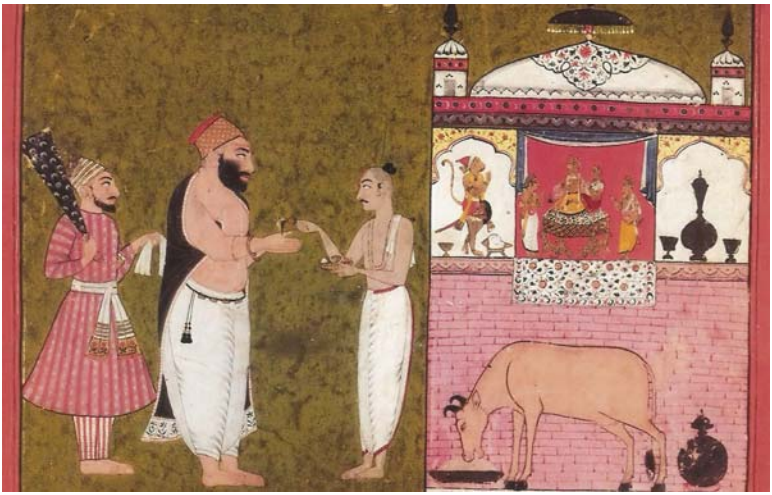

राजा छत्तर सिंह पूजा करते हुए (चंबा शैली)

हुआ है। दलीप रंजनी के रचयिता उत्तम कवि (गुलेर) ने चतर सिंह को रसिक लिखा है। चतर सिंह का पोट्रेट 17वीं शताब्दी के अंत का मिलता है जिसमें राजा का भारी भरकम शरीर दिखाया गया है। भूरि सिंह संग्रहालय चंबा में राजा चतर सिंह का हुक्का पीते हुए एक चित्र है।

हरमन गोट्ज़ के अनुसार सन् 1735 में लगी आग से बहुत सी सामग्री जल गई जिसमें चित्र भी शामिल थे। तथापि कुछ चित्र अभी भी मिलते हैं जो देश-विदेश के विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

उगर सिंह (1720-35) और दलेल सिंह (1735-48) के बाद उमेद सिंह के समय कला को प्रोत्साहन मिला। उमेद सिंह(1748-1764) ने अवयस्क होने के बावजूद लाहौर दरबार में भाग लिया। इस राजा के समय कलाकार लहरू द्वारा 'भागवत चित्रमाला' बनाई गई। भागवत के प्रसंग देवी कोठी के चामुंडा मंदिर के भित्ति चित्रों में भी हैं। भागवत चित्रमाला के अंत में कलाकार लहरू द्वारा इस कार्य को 9 फरवरी 1758 को पूरा करने का उल्लेख है। यह कार्य उमेद सिंह के छोटे भाई मियां शमशेर सिंह ने करवाया। कलाकार लहरू ने पृथ्वी सिंह, चतर सिंह, उगर सिंह, उमेद सिंह के पोट्रेट भी बनाए।

राजा जीत सिंह (चंबा शैली)

उमेद सिंह कला व वास्तुकला प्रेमी था। उसने सन् 1754 में देवी कोठी में चामुंडा मंदिर बनवाया जिसकी काष्ठ कला कृतियां दर्शनीय हैं। इसके भित्ति चित्र संभवतः लहरू तरखान ने ही बनाए। लक्ष्मीनारायण मंदिर की मुख्य मूर्ति के तोरण में लहरू नाम मिलता है। लहरू के साथ महेश का नाम भी है। प्रो. बी.एन. गोस्वामी के अनुसार हरिद्वार के पंडों की बही में चित्रकार दीश के पुत्र किरपालु और पौत्र लहरू के नाम हैं। लहरू का पुत्र पुन्नू था।

भागवत माला के कई चित्र भूरिसिंह संग्रहालय में हैं। लहरू द्वारा निर्मित भागवत चित्रावली में नारी आकृतियों का प्रभावशाली चित्रण हुआ है। घाघरा और चोली के ऊपर पारदर्शी पीले रंग की ओढ़नियां अद्भुत हैं।

उषा स्वप्न (चंबा कलम)

उमेद सिंह के पुत्र राज सिंह(1764-94) के *समय चंबा में समृद्धि* रही। अतः कला की भी उन्नति हुई। कलाकार पंडित सेऊ के परिजनों ने चंबा में कलाकृतियों का निर्माण किया। *उषा-अनिरुद्ध शृंखला, सुदामा चरित, रुक्मिणी हरण* जैसी चित्रमालाएं इसी समय बनाई गईं। रंग महल के भित्ति चित्र भी इसी समय बने। राज सिंह के कई चित्र बनाए गए। रानी के साथ, बाग में घूमते हुए, हुक्का पीते हुए कई तरह के चित्रों का निर्माण किया गया। भारत कला भवन में भी युवा राजा का चित्र है। राजा को अधिकतर ढाल तलवार लिए दिखाया गया है।

राज सिंह के बाद जीत सिंह (1744-1808) के समय भी इस कला को संरक्षण मिला। भूरिसिंह संग्रहालय चंबा में राजा जीत सिंह का रानी सहित पोट्रेट है।

भरत मिलाप (चंबा कलम)

विजय चंबयाल

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में नायिका भेद तथा बारामासा शृंखला के चित्र बनाए गए। इसके बाद यहां की कला में सिख प्रभाव आने लगा और स्तर भी नीचे गिरने लगा।

हिमाचल में हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा धर्मशाला में एक स्कूल चलाया गया जिस में चंदूलाल रैणा द्वारा प्रशिक्षण दिया गया। इस प्रशिक्षण में लगभग बीस कलाकार सामने आए। इसके बाद ललित कला अकादेमी दिल्ली, उत्तर क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र तथा स्वयं अकादेमी द्वारा गुरु-शिष्य परंपरा के अंर्तगत दो-दो शिष्यों को प्रशिक्षण दिया गया। प्रशिक्षण देने वाले अब तक मात्र तीन गुरु कलाकार शेष थे। पहले, ओम सुजानपुरी, जो हिमाचल अकादमी में कलाकार के पद पर कार्यरत थे। दूसरे ओ.पी. टॉक (अब दिवंगत), जो धर्मशाला में रहते थे। और तीसरे चंबा के विजय चंबयाल। विजय चंबयाल को अप्रैल 2012 में भारत सरकार से पद्श्री भी प्राप्त हुआ।

कुछ कलाकारों को सरकार द्वारा अधिगृहित मंदिरों में काम करने के लिए स्थान उपलब्ध करवाया गया है। इस समय धनीराम वज्रेश्वरी कांगड़ा में, जोगेन्द्र सिंह श्रीज्वालाजी में, मुकेश धीमान चामुंडा मंदिर में कार्य कर रहे हैं। चंदूलाल रैणा के पुत्र अनिल रैणा, मोनू कुमार, दीपक भंडारी, राजीव कुमार, सुशील कुमार भाषा संस्कृति विभाग के अधीन निर्मित कांगड़ा कला संग्रहालय, धर्मशाला में काम कर रहे हैं।

श्री अनंतराम शर्मा के घर 12 सितंबर 1962 को रामगढ़ मुहल्ला, चंबा में जन्मे विजय शर्मा एक मंजे हुए और संभावनाशील कलाकार हैं जो इस कला को आगे ले जाने में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। इनकी कला प्रदर्शनियां शिमला, चंडीगढ़, मुंबई, अहमदाबाद के अलावा विदेशों में; लंदन, जर्मनी, सिंगापुर, वाशिंगटन आदि में लग चुकी हैं। सन् 2012 में पद्मश्री से पूर्व इन्हें राज्य कला प्रदर्शनी पुरस्कार : 1980, ऑल इण्डिया फाइन आर्ट्स क्राफ्ट सोसाइटी अवार्ड : 1997, कालीदास अकादमी पुरस्कार : 2011, राष्ट्रपति द्वारा सिद्धहस्त शिल्पी राष्ट्रीय पुरस्कार 1990

मिल चुके हैं। एक कला समीक्षक के रूप में अनेक शोध पत्रों के अलावा 'पहाड़ी कलम के महान चितेरे' दो भागों में पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। वर्तमान में ये भूरिसिंह संग्रहालय चंबा में कार्यरत हैं।

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा करवाई गई पहाड़ी लघु चित्रकला प्रतियोगिता 2016 में चंबा के अंशुमोहन शर्मा को *गीत- गोविंद* चित्र के लिए प्रथम, कांगड़ा के कमलजीत को *नल दमयंती* के लिए द्वितीय और मौनू कुमार को *गीत-गोविंद* चित्र के लिए तृतीय पुरस्कार 13 जून 2016 को माननीय मुख्यमंत्री द्वारा प्रदान किए गए।

सिद्धहस्त और गुरु कलाकार विजय चंबयाल को पद्मश्री मिलने के अलावा अमीचंद धीमान को नेशनल मेरिट सर्टिफिकेट मिल चुका है।

चंबा रूमाल

पहाड़ी कलम और हस्तकला का सम्मिश्रण

चंबा रूमाल पहाड़ी कलम और कशीदाकारी के समन्वय का अद्‌भुत उदाहरण है। यह रूमाल 'चंबा रूमाल' के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि चंबा इसका मुख्य केंद्र रहा। तथापि इसका प्रचलन कांगड़ा, मंडी, बिलासपुर, जम्मू तथा बसोहली में भी रहा है। कांगड़ा में गोरखा आक्रमण के समय चंबा की ओर अधिक कलाकार आए अतः यह कला और अधिक निखरी।

यह कसीदाकारी पहाड़ी कलम के बाद आरंभ हुई। इन रूमालों में रेखांकन चित्रकला की भांति किए गए जिस में तूलिका का प्रयोग न कर के सूई का प्रयोग किया गया। यह माना जाता है कि अट्‌ठाहरवीं शताब्दी में यह हस्तशिल्प बसोहली में प्रचलित था। किंतु हिन्हीं कारणों से वहां इस कला का ह्रास हो गया और मुख्य केंद्र चंबा बना।

कढ़ाई का इस तरह का काम कपड़ों पर भी किया जाता था। चोली, टोपी, पंखा, चादर-सिरहाना आदि कई वस्तुओं पर कढ़ाई करने की परंपरा पहाड़ में पहले से रही है। किंतु यह रूमाल एक विशिष्टता के साथ उभर कर आया। यह कढ़ाई आम कढ़ाई से भिन्न थी और चंबा कलम का साक्षात् नमूना लगती थी।

चंबा रूमाल

कृष्ण चैतन्य के अनुसार चंबा रूमाल का सबसे पुराना उदाहरण राजा जीत सिंह की राजकुमारी शारदा के विवाह का है। राजकुमारी शारदा जम्मू की राजकुमारी थी और यह विवाह सन् 1783 में हुआ। जीत सिंह के पिता राज सिंह ने बसोहली से जीतने के बाद जम्मू के शासक राजा ब्रजराज देव से संधि की। इस रूमाल में विवाह मंडप में पवित्र अग्नि के समक्ष वर-वधू तथा राजा राज सिंह को दिखाया गया है। ब्राह्मण वेद पाठ कर रहे हैं। रूमाल में उकेरी वास्तुकला में कांगड़ा तथा बसोहली का प्रभाव हैं।

तकनीक

ये रूमाल प्रायः मलमल के कपड़े पर बनाए जाते थे जो पंजाब में बनता था। मलमल हथकरघे से बना होता जो सियालकोट, अमृतसर आदि स्थानों में तैयार होता था। अच्छा कपड़ा न मिलने पर साधारण कपड़े पर भी कढ़ाई कर ली जाती जो आकर्षक लगती।

कपड़े पर देवता, नारी-पुरुष की आकृतियां, भूदृश्य, फूल पत्ते आदि का रेखांकन पहाड़ी कलम के चितेरों से तैयार करवाया जाता। ये चितेरे उसी प्रकार का रेखांकन तैयार करते थे जिस प्रकार रंग भरने के लिए पहाड़ी चित्र बनाया जाता है। अंतर इतना ही था कि ऐसे रेखांकन में रंग भरने के लिए सूई धागे का प्रयोग किया जाता और यह कार्य महिलाएं करती थीं। आकृतियों में रंग भरने का सुझाव भी चित्रकार ही कर देते थे। इन आकृतियों को सूई-धागे से भरने का भरसक प्रयास महिलाओं द्वारा किया जाता। यद्यपि कसीदाकारी में रंगों की तरह बार-बार चंबा रूमालों में कृष्ण-लीला, रासमंडल, रामलीला, चौसर आदि के प्रसंगों के साथ फूल पत्ते और पक्षी चित्रित किए जाते। अधिकांश चित्रों में डिटेल्स बहुत होती जो पूरा का पूरा दृश्य साकार कर देती। जहां चित्रकार न मिले, महिलाओं ने अपने आप ही लोक शैली में ड्राईंग बना कर रूमाल काढ़े। विशेष अवसरों और सभ्रांत परिवारों के अलावा ये रूमाल आम जनता द्वारा भी प्रयोग में लाए जाते थे।

महत्ता व प्रयोग

रूमालों का प्रयोग मुख्यतः उपहार को ढांपने के लिए किया जाता। विवाह के अवसर पर वर-वधू की ओर से दिए जाने वाले उपहार किसी चंगेर या पिटारी में दिए जाते थे, जिन्हें इन रूमालों से ढक कर दिया जाता। विवाह के समय वेदिका में भी ऐसा काढ़ा हुआ रूमाल लगाया जाता।

लड़कियों के लिए इस तरह से सीना-पिरोना व कढ़ाई करना विवाह के लिए अनिवार्य गुण माना जाता था और लड़कियां विवाह के लिए ऐसे रूमाल या

चोली पर कसीदाकारी

अन्य सामग्री बड़ी लगन व मेहतन से काढ़ती थीं। दहेज में भी ऐसे रूमाल, चोली, टोपी, चादर, सिरहाने दिए जाते। कई रंगों के धागे भी दहेज में दिए जाते ताकि लड़की ससुराल में भी इस कला का प्रदर्शन कर सके।

विवाह के अतिरिक्त विभिन्न मंगल कार्यों में भी ये रूमाल उपहार ढांपने के काम आते थे। किसी त्योहार पर एक-दूसरे को भेंट देने की जाने वाली सामग्री, देवी देवता को उपहार ऐसे ही रूमालों से ढांप कर दिए जाते। देवी-देवता का आसन या घर में बना मंदिर भी रूमालों से कलात्मक ढंग से सजाया जाता। रूमाल, थापड़ा, चोली, गोमुखी या अन्य कपड़ा, जो इस कला से सुसज्जित हो, संभाल कर रखा जाता। घरों में अभी भी ये वस्तुएं सुरक्षित हैं और देखने को मिलती हैं तथापि इस कला के समाप्त होने पर ये उपेक्षित और संग्रहालय की वस्तु बन गई हैं।

देश तथा विदेशों के संग्रहालयों में इन रूमालों को पहाड़ी कलम के चित्रों की भांति सहेज कर रखा गया है। ऑल इंडिया हैण्डीक्राफ्ट बोर्ड, विक्टोरिया एंड एलबर्ट म्युजियम, चंडीगढ़ म्युजियम, लंदन, पेरिस, न्यूयार्क तथा कलकत्ता व बंबई के विभिन्न संग्रहालयों में इन रूमालों के उत्कृष्ट उदाहरण विद्यमान हैं। हिमाचल में राज्य संग्रहालय शिमला, भूरिसिंह संग्रलहाय चंबा, लोक संस्कृति संस्थान मंडी तथा कुछ प्राइवेट संग्रहलयों में भी इन रूमालों के उदाहरण देखे जा सकते हैं। चंबा व कांगड़ा के कुछ घरों में भी ये अभी विद्यमान हैं।

चंबा रूमाल

अब इन रूमालों का चलन कम हो गया है। इन्हें तैयार करने वाली कारीगर महिलाएं नहीं रहीं। हिमाचल में हस्तकला एवं हथकरघा निगम द्वारा इस कला को चलाए रखने के लिए कुछ कार्य किया जा रहा है किंतु इन्हें बनाने वाली कुछ ही महिलाएं शेष हैं। हंसराज धीमान ने चंबा कलम के चित्रों के अलावा तीन हजार से अधिक रूमालों में पारंपरिक चित्रांकन किया है। यद्यपि कुछ नए कलाकारों ने भी इसमें रुचि दिखाई है। ललिता वकील, कला चड्ढा के अलावा दिनेश कुमारी, सुनीता देवी, इंदु शर्मा, अनिता शर्मा, अंजली वकील, काम कर रही हैं।

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा वर्ष 2015 से चंबा रूमाल शैली के लिए प्रतियोगिता आरंभ की गई है। वर्ष 2016 में अकादमी की ओर से हुई प्रतियोगिता में 13 जून 2016 को स्थानीय हॉलीडे होम में प्रदेश के मुख्यमंत्री द्वारा पुरस्कार दिए गए। प्रथम पुरस्कार दिनेश कुमारी (नूरपुर), द्वितीय पुरस्कार इंदु शर्मा (चंबा) और तृतीय पुरस्कार कमला चड्ढा (चंबा) को प्रदान किया गया। सराज बेगम और ललिता वकील को राष्ट्रपति अवार्ड मिल चुका है।

कमला नायर को नेशनल मेरिट सर्टिफिकेट प्राप्त हुआ है।

अन्य कलाएं

चंबा तथा संलग्न क्षेत्रों में कलाओं के अन्य प्रकार भी प्रचलित रहे हैं। इन में गंजीफा, बंगद्वारी, भित्तिचित्र, आभूषण काष्ठागार, धातु शिल्प, चर्म शिल्प आदि हैं।

गंजीफा

लघु चित्रकला के प्रयोग का गंजीफा एक अनूठा उदाहरण है। गंजीफा के पत्तों में इस कलम के आकर्षक चित्र देखने को मिलते हैं।

'गंजीफा' फारसी का शब्द है। कहा जाता है बाबर द्वारा गंजीफा का खेल भारत में लाया गया। यह एक दरबारी खेल था जिसमें सोना चढ़े चांदी के पत्तों का प्रयोग किया जाता था। अकबर के समय गंजीफा के बारह पत्तों के आठ सेट बने। सभी सेटों में अलग-अलग चिह्न थे। बारह पत्तों में एक बादशाह था, एक वजीर। इन चिह्नों को अलग-अलग ढंग से अपनाया गया। मुगल दरबार में प्रयुक्त पत्तों में सूर्य, चांद, ताज, पत्र आदि चिह्न बना कर प्रयोग में लाए गए। हिंदुओं द्वारा भी कुछ पशुओं जैसे शेर, घोड़ा, हाथी, गाय आदि के चिह्न प्रयोग में लाए गए। इन पत्तों के लिए दशावतार एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा।

गंजीफा का नमूना

बारह पत्तों के सेट में बादशाह तथा वजीर के अतिरिक्त दस पत्ते होते हैं। बादशाह को चौकी पर बिठाया दिखाया गया है, जिसके आगे एक सेवक हाथ जोड़े खड़ा है। बादशाह या पाशा ने दाएं हाथ में अपने सेट के पत्तों का एक चिह्न पकड़ रखा है। वजीर घोड़े पर सवार दिखाया गया है। इसने भी अपने दाएं हाथ में चिह्न पकड़ रखा है।

भूरिसिंह संग्रहालय में 96 पत्तों का सेट है। यह गंजीफा बारह -बारह पत्तों के आठ सेटों में विभक्त है। संग्रहालय में उपलब्ध इस सेट में दो पत्ते कम हैं। कांगड़ा शैली में लगभग अट्ठारहवीं शताब्दी के अंत में बना यह सेट चंबा के मणिकंठ गुजराती चित्रकार हीरालाल के पास था। एक पत्ता 52X42 मिलीमीटर का है।

यह गंजीफा सेट किसी अच्छे पहाड़ी कलम के चितेरे का उत्कृष्ट काम है। एक सेट में पहाड़ी कलम के चित्रों के माध्यम से दस पत्तों का सुंदर अंकन हुआ है। नंबर एक के पत्ते में उत्का नायिका है जो फूलों से लदे पेड़ पर बैठी है। नंबर दो के पत्ते में एक मुगल दिखाया है। नायिका योद्धा को कुछ भेंट कर रही है। नंबर तीन के पत्ते में श्रवण कुमार अपने अंधे माता-पिता को बेंहगी में लिए जा रहा है। नंबर चार में एक राजा बैठा है जिसके तीन सेवक सामने हैं। नंबर पांच में एक युगल बैठा है। एक सेविका खड़ी है, दो गायिकाएं बैठी हुई गा रही हैं। तीन आदमी तमाशा देख रहे हैं। एक ढोलक बजा रहा है, दूसरा संभवतः गा रहा है। आठवें में आठ भांग पीने वाले हैं। नवें में राजा तथा दरबारी संगीत-नृत्य देख रहे हैं। दसवें पत्ते में एक गायिका है। ऊपर के भाग में गायिका के दर्शक हैं तो निचले में दो दलों में आपस में झगड़ा हुआ है। पाशा में राजा हाथी पर सवार है। वजीर बैल पर बैठा है।

आभूषण काष्ठागार

कांगड़ा, चंबा तथा अन्य क्षेत्रों में पुराने समय में लकड़ी की सुंदर पिटारियां प्रयोग में लाई जाती थीं। यूं तो घर की रोज़मर्रा की सामग्री रखने के लिए भी काष्ठागार ही प्रयोग में लाए जाते थे। रसोई का सामान, बिस्तर व अन्य सामग्री के लिए का ठ निर्मित बक्सों का प्रयोग किया जाता था। आभूषण आदि व कीमती सामान रखने के लिए अलंकृत पिटारियों का प्रयोग किया जाता था। सिंदूर, काजल और अन्य शृंगार सामग्री भी इन्हीं में रखी जाती।

सामान्यतः ये डिब्बे गोलाकार होते थे। नीचे के गोलाकार डिब्बे के ऊपर एक ओर गोलाकार, बीच में उभरा हुआ ढक्कन लगाया जाता जिसे तीन ओर से लोहे की कुंडियों से बांधा जाता। एक ओर दरवाजे की तरह कुंडी खोलने और बंद करने के काम आती। दो कुंडियां बंद ही रखी जातीं। साधारण काम के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले या साधारण लोगों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले बिना कलाकृतियों के

आभूषण काष्ठागार

ही बने होते। विशेष समारोहों में प्रयोग करने के लिए या राजाओं, राजकर्मचारियों या धनाढ्य लोगों के लिए इनमें चित्रकला की कलाकृतियां बनाई जातीं।

सन् 1961 में राष्ट्रीय संग्रहालय द्वारा एक ऐसा आभूषण काष्ठागार अर्जित किया गया जिस में हर ओर पहाड़ी कलम की कलाकृतियां उकेरी गई थीं। यह उन्नीसवी शताब्दी की कलाकृति मानी गई है।

इस काष्ठागार के बाहर चारों ओर, ढक्कन के ऊपर अंडाकार आकार दशावतार चित्रित किए गए हैं। इन चित्रों के बीच जहां स्थान बचा है, वहां भी फूल बनाए गए हैं। यह काष्ठागार लकड़ी का न हो बांस की फट्टियों से बनाया गया है। बांस की फट्टियों को बराबर रखने के लिए कागज की परतें लगाई गई हैं जिन पर गुलाबी रंग की मिट्टी लगाई गई है।

ऐसे अलंकृत काष्ठागारों, डिब्बों और पिटारियों का प्रयोग चंबा में भी किया जाता था।

साधारण काष्ठागारों में बांस के बने बड़े आकार के पेडू जिनमें धान या चावल रखे जाते। अनाज रखने या लाने ले जाने के लिए बकरे की खाल के खलडू भी इस्तेमाल किए जाते थे। बकरे की खाल लंबे आकार के झोलानुमा पात्र खलडू गद्दी लोगों द्वारा आज भी इस्तेमाल किए जाते हैं।

बंगद्वारी परंपरा

चंबा में गुजरात के कलाकारों के आगमन से पूर्व भी यहां चित्रकारी की परंपरा रही है, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। प्रवेशद्वार, घर की दीवारों पर चित्रकारी करने की प्रथा पहले भी रही होगी। द्वार के चारों ओर की गई चित्रकारी को 'बंगद्वारी' कहा जाता है, यह गुजरात में भी प्रचलित है। अतः संभव है गुजरात

के कलाकारों ने इसे नवीन रंग दिया।

यूं तो मुख्यद्वार या सभी द्वारों के तीनों ओर चित्रकारी करने की परंपरा कांगड़ा में भी रही है। चंबा की बंगद्वारी के अलग रंग हैं और यह चित्रकारी विशेष तौर पर की जाती है।

विवाहादि के अवसर पर मुख्यद्वार के तीनों ओर बेलबूटे, फूलपत्ते, पक्षी आदि का चिण किया जाता है। चितरेरे इस तरह का अलंकरण करते हैं। ये अलंकरण खिड़कियों में भी किया जाता है। चंबा में बंगद्वारी का अलंकरण करना विशेषता है जो चंबा कलम के प्रादुर्भाव से पूर्व भी रही होगी।

दरवाजे के ठीक ऊपर, बीच में गणेश की प्रतिमा बनाई जाती है जिसके साथ वाहन चूहा व दो महिला सेविकाएं खड़ी की जाती हैं। इसके बाहर अलंकृत बॉर्डर बनाया जाता है। गणेश प्रतिमा के बाहर भी अंलकरण किया जाता है। दरवाजे के दोनों ओर चौड़ी पट्टी में अलंकरण किया जाता है। इसमें मकर आकृति, देवी, ब्राह्मण तथा सेविकाएं बनाई जाती हैं। ऊपर का हिस्सा गुंबदाकार और छत से सुसज्जित रहता है। देवताओं और नायिकाओं के चित्र एक दूसरे की ओर मुंह किए उकेरे जाते हैं। इन चित्रों को बाहर से फूल पत्ते लगा कर सजाया जाता है। पैनल का एक एक चित्र अपने में पूरी पेंटिंग लगता है। बंगद्वारी सामान्यतः दीवार पर पीला रंग लगाने के बाद की जाती है।

भित्ति चित्र

पहाड़ी कला में भित्ति चित्रों की परंपरा पहाड़ी कलम से ही आई। चित्रकारों ने इस कला का प्रयोग बड़े केनवास पर बड़े आकार में किया। इसके लिए मंदिरों, महलों की दीवारों को चुना गया। किले तथा महलों में भी इसका प्रयोग किया जाता था। कांगड़ा किला, सुजानपुर टिहरा के मंदिर, नूरपुर, कुल्लू में इस कला के नमूने देखे जा सकते हैं।

मंदिरों रामायण, महाभारत, दुर्गा सप्तशती, भागवत् व शिव पुराण आदि; राजमहलों में नायक-नायिका, दरबार आदि के चित्रों का निर्माण किया गया।

कुमारस्वामी के अनुसार राजपूत चित्रकला भित्ति चित्रों से आई। किंतु पहाड़ी कलम के समीक्षकों का मत है कि लघु चित्रों की बड़ी अनुकृतियां दीवारों पर उकेरने से ही यह कला अस्तिव में आई। डॉ. वी.सी. ओहरी के अनुसार पहाड़ी भित्ति चित्र सन् 1720-30 से पहले देखने को नहीं मिलते।

दीवारों पर बने इन भित्ति चित्रों में फूल, पत्तों के अतिरिक्त कुछ कथाओं को भी चित्रित किया गया है। इन कथाओं के चित्रण में घर, महल, अट्टालिकाएं, वृक्ष

वनस्पति, पशु-पक्षी भी चित्रित किए गए।

इस चित्रावली का आधार पहाड़ी कलम ही रहा।

चंबा में इस प्रकार के भित्ति चित्र रंग मंहल चंबा, छतराड़ी मंदिर तथा देवी कोठी मंदिर में देखने को मिलते हैं। रंग महल के भित्ति चित्र राज सिंह (1764-94) के समय में बनाए गए। देवी कोठी का मंदिर राजा उमेद सिंह ने 1754 में बनवाया। चामुंडा देवी के इस मंदिर में काष्ठ कलाकार तथा कलाकार लहरू को माना जाता है। प्रवेश द्वार पर राजा उमेद सिंह, राजा के भाई तथा पुत्रों के व्यक्ति चित्र उकेरे गए हैं। भित्ति चित्रों में महिषासुर मर्दिनी, भागवत पुराण तथा कृष्ण बाललीला का अद्भुत चित्रण किया गया है। देवी द्वारा राक्षसों का संहार प्रमुख विषय है। चित्रों को देखकर यह भी लगता है कि ये एक से अधिक कलाकारों द्वारा बनाए गए होंगे क्योंकि चित्रों की उत्कृष्टता और कलात्मकता में अंतर नज़र आता है। चंबा पुल से कुछ पहले सड़क के साथ एक बावड़ी में भी चित्र थे जिनकी एक बार भाषा-संस्कृति विभाग द्वारा ट्रीटमेंट भी करवाई गई थी।

धातु शिल्प

चंबा भरमौर का धातु शिल्प बहुत प्रसिद्ध रहा है। इस क्षेत्र में धातु शिल्प की प्राचीन और आश्चर्यजनक मूर्तियां मिलती हैं। भरमौर की लक्षणा देवी प्रतिमा हो या छतराड़ी की शक्ति देवी; चंबा चौगान में हरिराय मंदिर की विष्णु मूर्ति हो या अन्य मोहरे, सब उत्कृष्ट और गुप्कालीन मानी जाती हैं।

धातु शिल्प की यह परंपरा चंबा में लंबे समय से चली आ रही है। आज भी हाकम सिंह जैसे कुछ कलाकार इस कला में कार्य कर रहे हैं।

धातु शिल्प में मुहम्मद लतीफ, सोहन लाल, हाकम सिंह, प्रकाशचंद को राष्ट्रपति अवार्ड मिल चुका है।

चंबा चप्पल

चंबा की चप्पल लंबे समय से प्रसिद्ध रही है। आकर्षक डिजायन में रोज़ पहनने की साधारण चप्पल यहां बनाई जाती हैं। चंबा चौगान के साथ लगती किसी भी दूकान में यह चप्पल ख़रीदी जा सकती है। बच्चों के लिए आकर्षक डिजायन में तथा महिलाओं के लुभावने रंगों में चमड़े से बनी चप्पलें लोगों के आकर्षण का केंद्र है।

इनके अतिरिक्त चंबा में सफेद रंग का शहद बहुत प्रसिद्ध है। यह बहुत पौष्टिक, गुणकारी और स्वादिष्ट माना जाता है। हरी और लाल मिर्चों से बनी चंबा की चटनी जिसे 'चंबा चुख' के नाम से जाना जाता है, प्रसिद्ध है। गरी आदि डाल कर 'जरीस' भी बनाई जाती है जो खाने के बाद सौंफ की तरह खाई जाती है। खानपान में चंबा का 'मदरा' बहुत प्रसिद्ध है। यह विवाहादि के अवसर पर भोज या धाम के दिन भात के साथा परोसा जाता है। प्रायः यह राजमाह या रौंगी का बनाया जाता है।

भूरिसिंह संग्रहालय

सन् 1908 में स्थापित भूरिसिंह संग्रहालय चंबा चौगान के एक सिरे पर स्थित है। पहले यह एक पुराने भवन में स्थापित था। अब साथ ही एक नया भवन बना दिया गया है। यह संग्रहालय देश में स्थापित संग्रहालयों में चौथे स्थान पर माना जाता है।

जे. पी. एच. वोगेल, सुपरिटेंडेंट आर्किओलोजिकल सर्वे, नॉदर्न सर्किल ने 9 जनवरी 1909 को भूरिसिंह संग्रहालय चंबा के केटलॉग की भूमिका में लिखा हैः

राजा भूरिसिंह

''चंबा राज्य में 1902 की गर्मियों तक जारी मेरे अन्वेषण में पत्थर व धातु दोनों में, बड़ी संख्या में संस्कृत शिलालेखों की खोज हुई। यह अब स्वाभाविक था कि इन पुरातन दस्तावेजों के संरक्षण हेतु विशेष उपाय किए जाने चाहिए थे, जिनमें से अधिकांश का स्थानीय इतिहास से गहरा ताल्लुक था। और ये हिज हाईनेस सर भूरिसिंह के.सी.एस.आई. ही थे जिन्होंने सुझाव दिया कि इन थातियों के संरक्षण के लिए एकमात्र उत्तम साधन संग्रहालय ही हो सकता है।

1908 में, चौगान में एक उपयुक्त सरकारी बिल्डिंग को इस उद्देश्य से चुना गया और मैंने उन गर्मियों का एक हिस्सा कलाकृतियों के नाम लिखने व केटलॉग बनाने में समर्पित कर दिया।''

वोगेल ने लिखा है कि बहुत से शिलालेखों के क्षतिग्रस्त होने का ख़तरा था जो उनके पहले के दौरों के दौरान इकट्ठा किए गए थे। बहुत से ताम्रपत्र थे जिन्हें उनके मालिक संग्रहालय को देने के लिए रजामंद थे। चंबा के राजाओं की बहुत

सी सनदें थीं। राजा भूरिसिंह तथा राज्य के हाकिमों द्वारा दिखाई व्यक्तिगत रुचि से बहुत योजनाएं कार्यान्वित हो पाईं।

राजा भूरिसिंह ने संग्रहालय के लिए बहुत से चित्र भेंट किए। इस नये संस्थान के लिए राजा द्वारा बुद्धिमता से तैनात कैप्टन श्रीकांत ने भी बहुमूल्य संग्रह दिया जिस में चंबा रूमाल के बहुमूल्य नमूने भी थे। 4 अप्रैल के भूकम्प से पहले वोगेल राज्य कोठी भरमौर से पुरातन काष्ठ कलाएं लाने में भी सफल रहे।

इस संग्रहालय का उद्घाटन 14 सितंबर 1908 को मि. आर.ई. यंगहसबैंड, सी.एस.आई. कमिशनर, लाहौर द्वारा बड़ी संख्या में उपस्थित यूरोपीय अतिथियों तथा राज्य के अधिकारियों के समक्ष किया गया। यह भी निर्णय हुआ कि इस संग्रहालय का नाम राजा भूरिसिंह के नाम पर रखा जाए जिन्होंने इस परियोजना को आरंभ किया था और सहायता की थी।

वोगेल द्वारा जनवरी 1909 में इस संग्रहालय का एक केटलॉग भी प्रकाशित किया गया जिसका रिप्रिंट संस्कृति विभाग, नई दिल्ली की सहायता से भाषा-संस्कृति विभाग द्वारा सन् 2005 में निकाला गया।

मुख्यतः यह संग्रहालय पुरातन पाषाण व ताम्र शिलालेखों, पट्टे, सनदों तथा चंबा कलम के लिए जाना जाता है। इसमें संस्कृत, टाकरी में शिलालेख, पनघट शिलालेख, ताम्रपत्र, कागज़ में अभिलेख, पट्टे, दानपत्र, एतिहासिक दस्तावेज़, पुरातन पाण्डुलिपियां, पुराने हथियार तथा चंबा रूमाल सहित कसीदाकारी के अद्भुत नमूने हैं।

छह नवंबर 1962 को डॉ. वी.सी. ओहरी ने इस संग्रहालय का कार्यभार संभाला और 26 अप्रैल 1973 तक संग्रहालयाध्यक्ष के पद पर रहे।

भूरि सिंह संग्रहालय : नया भवन

सन् 1972 में प्रदेश में भाषा-संस्कृति विभाग बनने पर यह संग्रहालय इस विभाग के अधीन आ गया। डॉ. वी.सी. ओहरी ने इस का संग्रहालयाध्यक्ष बनने पर विशेष योगदान दिया और कलाकृतियों में महत्ती बढोतरी की। डॉ. ओहरी बाद में राज्य संग्रहालय शिमला के संग्रहलयाध्यक्ष भी रहे।

इस संग्रहालय में गुप्त काल की मूर्तियां, शिलालेख व पुरालेख मिलते हैं जो इतिहास की जानकारी के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। कई प्रतिमाओं व दस्तावेज़ों में खोज होनी बाकी है।

भूरिसिंह संग्रहालय में दीपक लिए साधक की मूर्ति अद्वितीय है। यह प्रतिमा छतराड़ी से मिली है जिसका उल्लेख डॉ. वी.सी. ओहरी किया है।

साधक की प्रतिमा

साधक ने एकावली पहन रखी है। कानों में बड़े बड़े कुंडल हैं। बाईं ओर कमर में कटार है। अधोवस्त्र गुप्त तथा परवर्ती गुप्तकाल के पहरावे की भांति है। दोनों हाथों में दीपक पकड़ रखा है। यह मूर्ति शक्ति देवी छतराड़ी के समय की मानी जाती है जो राजा मेरु वर्मन की हो सकती है।

साधक की आंखें बंद है और वह शांत मुद्रा में है। प्रतिमा बीच से खाली है यानी भरवां नहीं है। प्रतिमा बुद्ध की मूर्तियों की भांति है। सिर, चेहरा, कान बुद्ध

प्रतिमाओं की भांति हैं। वक्षस्थल तथा शरीर की बनावट भी बुद्ध प्रतिमाओं की भांति है। इसे देख परशुराम मंदिर निरमंड (जिला कुल्लू) से निकली अद्वितीय बुद्ध प्रतिमाओं का स्मरण हो आता है।

1985 में संग्रहालय का नया भवन बना और कलाकृतियां नये भवन में स्थानांतरित कर दी गई।

संग्रहालय में छह हजार से अधिक कलाकृतियां हैं। सब से प्राचीन मूर्ति शिवपुरी अर्थात् गूं कोठी से प्राप्त छठी शताब्दी की सूर्य प्रतिमा है। इस प्रतिमा में गुप्तोत्तर प्रभाव है। सूर्य सात घोड़ों पर सवार है। सूर्य पत्नियां उषा और प्रत्यूषा बाईं और दाईं ओर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाए अंधेरे को बींधती दिख रही हैं। सात घोड़ों के बीच सारथी अरुण विराजमान है।

राजा साहिल वर्मन के वैष्णव को जाने के फलस्वरूप वैष्णव मूर्तियां बनाई जाने लगी थीं। संग्रहालय में नौ नागों के फन से युक्त बलराम की प्रतिमा, विष्णु प्रतिमाएं, विष्णु अवतारों की प्रतिमाएं विद्यमान हैं। विष्णु का वैकुंठ रूप अधिक प्रचलित रहा।

प्रतिमाओं के अतिरिक्त मॉफिट और शिलालेखों सहित पनघट शिलाएं भी यहां मौजूद हैं जो चंबा के इतिहास के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं।

चंबा चित्रकला के अद्भुत नमूने भी इस संग्रहालय की थाती हैं। राजा भूरिसिंह द्वारा दिए गए चित्रों के अलावा नूरपुर, मंडी और बसोहली के चित्र भी संग्रहालय में संरक्षित किए गए हैं। इन चित्रों की संख्या एक हजार से अधिक है। *उषा-अनिरुद्ध, रसिक प्रिया, रामायण, भागवत, दुर्गाशप्तशती, बारामासा, रागमाला* के चित्र इन में हैं।

काष्ठकला के फलक, सिक्के, चंबा रूमाल के अतिरिक्त एक सौ पचास से ज्यादा ताम्रपत्र हैं। प्राचीन सनदें, फ़रमान, दो सौ के करीब पाण्डुलिपियां, मध्ययुगीन कांस्य प्रमिमाएं, जनजातीय वेशभूषा के नमूने, आभूषण तथा प्राचीन अस्त्र-शस्त्र भी यहां प्रदर्शन के लिए रखे गए हैं।

गाथा रानी सूही की

रानी या बहू की बलि देने पर जल स्रोतों में पानी आना या कूल्हों में पानी निकलने संबंधी कई कथाएं हिमाचल प्रदेश में प्रचलित हैं। चंबा की सीमा पर चड़ी नामक स्थान में बहू की बलि दे कर पानी लाया गया। यह करुण गाथा आज भी इस क्षेत्र में गाई जाती है। इसी प्रकार चंबा की स्थापना के समय नगर में पानी के अभाव पर रानी का बलिदान दिया गया।

नगर की स्थापना के बाद राजा के बहुत प्रयत्न करने पर भी पानी की व्यवस्था नहीं हो पाई। अंत में उसने नगर के पीछे से सरोता नहर में पानी लाया। पानी उस नहर में नहीं आया और इसे किसी दैवी शक्ति का प्रकोप माना गया। ब्राह्मणों से सलाह करने पर बताया गया कि यदि राजा, रानी या पुत्र की बलि दे तभी पानी आएगा। दूसरे मत के अनुसार राजा को स्वप्न आया कि यदि वह अपने पुत्र की बलि दे तभी पानी आएगा। ऐसा जानने पर रानी ने पुत्र की अपेक्षा अपने को बलि देने के लिए प्रस्तुत किया। यह भी मत है कि राजा को एक बार स्वप्न आया जिस में उसे रानी दिखाई दी। रानी ने कहा कि दुखी होने की आवश्यकता नहीं है। राजा चैत्र मास में प्रतिवर्ष रानी के नाम से एक मेले का आयोजन करे और गद्दी महिलाओं को अच्छा-अच्छा भोजन खिलाए। इन गद्दी महिलाओं में रानी भी उपस्थित रहेगी। अंततः रानी ने सती वेश धारण कर प्रस्थान किया और नहर के मूल स्थान में दफन होकर बलिदान दिया। कहा जाता है कि रानी के दफन होते ही पानी बहने लगा।

रानी के बलि स्थान पर मंदिर बनाया गया और हर वर्ष मेला मनाया जाने लगा। कहा जाता है रानी सूही के बलिदान देने जाते समय पांव में ठोकर लगी और अंगूठे से खून बहने लगा था। उसी स्थान पर सूही का मंदिर बनाया गया।

पहले यह मेला प्रथम चैत्र मास से आरंभ होता था। चौदहवें चैत्र को 'फलातरे री घुरेई' मनाई जाती थी। शहनाई और ढोल बजाए जाते और धड़ोग मुहल्ले की महिलाएं चंबा में चामुंडा के मंदिर से फूल चुन कर घुरेई नाचती हुई सपड़ी मुहल्ले तक जातीं। पंद्रह चैत्र तक सूही के मंदिर में घुरेई नाची जाती। पंद्रहवें से बीसवें चैत्र तक मेहतरानियां रानी सूही के मंदिर की निचली सीढ़ियों की सफाई करतीं और घुरेई भी नाचतीं। इसके बाद कन्याएं घुरेई नाचतीं। इक्कीसवें से पचीसवें चैत्र तक 'राजे री सुकरात' होती जिसमें संभ्रांत महिलाएं तथा राजकुमारियां सूही माता की पूजा

गद्दी महिलाएं

करतीं। गद्दण महिलाएं बाहर घुरेई डालतीं। महीने का आख़िरी दिन सुकरात के रूप में मनाया जाता। इस दिन राजा व राजपरिवार के लोग, संभ्रांत नागरिक सूही माता की पूजा अर्चना करते और राजमहल की जनानी प्रौल़ (जनाना द्वार) तक जाते। मेले के अंतिम दिनों में गद्दी महिलाओं को स्वादिष्ट भोजन कराया जाता।

पुराने समय में इस मेले में केवल लड़कियां और महिलाएं ही भाग लेती थीं।

रानी सूही के मेले में जाने के लिए छोटी लड़कियां अपने माता पिता से नए सुंदर कपड़े, चप्पल या जूते, नई सलवार बनवाने की ज़िद्द करती हैं। वे कहती हैं कि ये हमें नये कपड़े, जूते ले दो नहीं तो नंगे पांव, नंगी टांगें ही चली जाएंगी :

आया बसौआ, लगियां सूहियां, कुड़ियां अड़ियां पांदी हो।
लेई देयां अम्मां मोचड़ू, मैं सूहियां देखण जाणा हो।।
नीं दिंदी, तू निज मत दें, मैं नंगेयां पैरां चली जाणा हो।
देयां अम्मां मिंजो सोथणू, मैं सूहियां देखण जाणा हो।
नीं बो दिंदी, ता निज मत दें, मैं नंगियां जंघा चली जाणा हो।

अब बहुत सी परंपराएं समाप्त हो गई हैं। तथापि मेला एक सप्ताह तक मनाया जाता है। गद्दण महिलाओं को ज़िला प्रशासन भोजन खिलाता है। मलूण से आज भी चंबा को पानी मिल रहा है।

इस हृदयग्राही प्रसंग का वर्णन आज भी लोकगीतों में किया जाता है। इस गीत को सुकरात कहा जाता है।

सुकरात

गुड़के चमके भाऊआ मेघा हो,
हो राणी चम्ब्याली रे देसा हो।
किहां गुड़का किहां चमकां हो,
हो अम्बर भरोरे तारे हो।
कुथूये दी आई काली बादली हो,
कुथूये दा बरसेया मेघा हो।
छातिए दी आई काली बादली हो,
नैणा दा बरसेया मेघा हो।
सुकरात कुड़ियो-चिड़ियो हो,
सुकरात राजे दे बेहड़े हो।
सुकरात कुड़ियो-चिड़ियो हो,
सुकरात चंबे दे चुगाना हो।
सुकरात कुड़ियो-चिड़ियो हो
सुकरात नौणा पणिहारे हो।
ठण्डा पाणी किहूंया पीणा हो,
तेरी नैणा हेरी-हेरी जीणा हो।
सुकरात कुड़ियो-चिड़ियो हो,
सुकरात सुई रे मढ़ा हो।
गुड़के चमके भाऊआ मेघा हो,
हो राणी चंबायाली रे देसा हो।

गीत में मेघ से प्रार्थना की गई है कि चंबयाली रानी के देश में बरसना---हे मेरे भाई मेघ! घुड़क चमक कर रानी चंबयाली के देश में बरसना। बादल कहता है : मैं कैसे घुड़कूं, कैसे चमकूं, अंबर तो तारों से भरा हुआ है। कहां से आई काली बदली, कहां से आए बरसा मेघ! छाती से आई काली बदली, नैणों से बरसा मेघ।

सुकरात का अर्थ दो तरह से लिया जाता है। पहला 'सुख' यानी अब सुख की रात आ गई है। राज के महल में भी अब सुख की रात है। दूसरा अर्थ 'सूखे' की रात से लिया गया है। रानी के बलिदान से हर ओर सूखा-सूखा लग रहा है।

सुकरात (रूपांतर)

सुकरात कुड़ियो चिड़ियो
सुकरात राजे रे बेहड़े हो।
सुकरात कुड़ियो चिड़ियो

सुकरात चौंह्डी रे बेह्ड़े हो।
सुकरात कुड़ियो चिड़ियो
सुकरात चंबे रे चौगाना हो।
सुकरात कुड़ियो चिड़ियो
सुकरात लछमी नरैणा हो।
सुकरात कुड़ियो चिड़ियो
सुकरात नौणा पाणी जाणा हो।
ठण्डा पाणी कियां करी पीणा हो
तेरे नैणा हेरी हेरी जीणा हो।

हिमाचल में पानी के लिए दिए गए बलिदानों की गाथा को 'कुल्ह' कहा जाता है। क्योंकि बलिदान के बाद कुल्ह या नहर में पानी बहने लगता है। चड़ी या अन्य स्थानों में गाई जाने वाली कुल्ह की भांति चंबा में भी कुल्ह का गायन किया जाता है। चैत्र मास की संक्रांति से 'ढोलरू' गायन आरंभ होता है जिसमें कोई गाथा घर घर जा कर सुनाई जाती है। इस दिन चैत्र मास का नाम सुनने के साथ गाथाएं सुनाई जाती हैं। इन गाथाओं को सुनाने वाले डूमणे लोगों को आदर से घर के आंगन में बिठा कर पूजा सामग्री, चावल, दाल, मक्की, गुड़ घी, कपड़े आदि दिए जाते हैं। ये अपनी ढोलकी को टीका लगा धूप आदि जला कर गायन आरंभ करते हैं :

पैहला ता नां नेइये नरैणा दा, हां पैहला ता
जिनी सारी सरिस्टी बणाई न, हां पैहला ता।

जिसने कुल्ह सुननी हो वह इसे सुनने का विशेष आग्रह करता है, तभी कुल्ह सुनाई जाती है। रानी सूही के बलिदान की कथा अलग-अलग तरह से सुनाई जाती है। प्रचलित कथा में राजा स्वयं, अपने पुत्र, पुत्री की बलि न दे कर रानी की बलि देता है। कुल्ह की इस कथा में रानी स्वयं अपने को बलिदान के लिए प्रस्तुत करती है। रानी रोती हुई कहती है.... और तो यहां सब कुशल है किंतु चंबा में पानी की बहुत मुश्किल है। निचले देश से आए मिस्त्रियों को वह अपने सामने हाज़िर होने को कहती है और उनके सामने भी यही बात कहती है कि चंबा में पानी नहीं है। मिस्त्री रानी को आश्वासन देते हैं कि वे पानी जरूर पहुंचा देंगे। रानी ने मिस्त्री कुल्ह मलूण पर भेजे। जब उन्होंने कुदाल धरती पर मारा तो धूल ही धूल उड़ी। दूसरी बार वार किया तो कीचड़ ही कीचड़ निकला। तीसरी बार मारा तो धूल की मुंडी (सिर) निकली। मुंडी ने कहा, जब कोई मनुष्य यहां बलि देगा, तभी पानी निकलेगा। ऐसे में रानी सोचने लगी यदि राजा की बलि दी जाएगी तो न्याय कौन करेगा! यदि पुत्र की बलि दी गई तब तो राज्य ही समाप्त हो जाएगा। पुत्री की बलि दी गई तो दूसरे

राज्य से संबंध नहीं बन पाएगा। अंत में रानी ने कनेड़ गांव से कहार मंगवाए और मलूण नामक स्थान को चल दी। रानी के बच्चे रोने लगे तो रानी ने समझाया कि वह कुल्ह का पूजन कर वापिस लौटेगी। रानी ने वहां जा कर अपने को जिंदा चिनवा दिया।

रानी को जिंदा चिनवाते समय उसके एक एक अंग को चिनने के क्षण बहुत भावुक हैं।

मेरे और अंग चिनवा देना, मेरे पांव मत दबाना। मेरी गुड्डी बेटी आएगी और पांव के जूते पहनाएगी। और सब अंग दबा देना, मेरी टांगें न दबाना। मेरी गुड्डी बेटी सलवार पहनाने आएगी। मेरे सब अंग दबा देना, मेरी छाती न दबाना। मेरा घुंघरू बेटा आएगा और दूध पीने के लिए स्तन ढूंढेगा :

होर ता होर सब दबो बो मह्णुओ, छाती जो मेरी मत दबदे हो।
इल्ला ता इल्ला मेरा घुंघरू बेटा, मम्मे जे पीणे होल्ले हो।

मेरे सब अंग दफना देना, मेरे सिर की चुटिया न दबाना। मेरी गुड्डी बेटी जरूर आएगी और मेरे बाल संवारेगी :

होर ता होर सब दबो बो मह्णुओ! बीणी जो मेरी मत दबदे हो।
ईल्ली ता ईल्ली मेरी गुड्डिया धीया, सहरणा होल्ला हो।

रानी को दफना दिया गया। बच्चे मां की प्रतीक्षा में बैठे रहे। बच्चों ने चौगान से लोगों से पूछा कि उनकी मां क्यों नहीं आई तो लोगों ने कहा वह जनसाली की टोली के साथ आ रही है। जब जनसाली मुहल्ले की टोली को पूछा तो उन्होंने कहा वे आगे निकल आए, वह भरमौर की टोली के साथ आ रही है :

सुणां ता सुणां मेरे जानसालुओ भाइयो! अम्मां से ईधी किना आई हो
असी ता आसी अग्गरे आए, आई सैह् भरमौरी दी टोली हां
सुणां ता सुणां मेरे भरमौरिया भाइयो! ईधी अम्मा किना आई हां।

अंततः बच्चे महलों में वापिस आ गए :

सेइयो सेइयो सेइयो बच्चे बो मह्णुओ
हट्टी सैह् महलां जो आए हां।

मिंजर महोत्सव

प्रदेश में अधिकांश मेले-उत्सवों का आयोजन धार्मिक अनुष्ठानों से जुड़ा हुआ है। वर्ष भर ये उत्सव तथा मेले अच्छी फसल आने की संभावना में, फसल की कटाई के बाद तथा फुरसत के क्षणों में मनाए जाने के बाबजूद किसी न किसी देवता या मंदिर से संबद्ध रहते हैं। ऐसा ही एक मेला मिंजर मेला।

चंबा नगरी प्रदेश की पुरातन राजधानी नगरी है। कांगड़ा (सुजानपुर), कुल्लू, मंडी, नाहन, रामपुर की भांति यहां भी राजमहल हैं। नगर के बीच श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर, चंपावती मंदिर तथा हरिराय के पुरातन मंदिर हैं। बीच में सुंदर चौगान है। यहीं मिंजर का उत्सव मनाया जाता है।

शोभा यात्रा

राजा साहिल वर्मन (920) ने ब्रह्मपुर से बदलकर चंबा में राजधानी बसाई और अपनी पुत्री के नाम पर 'चम्पा' या 'चंबा' नाम रखा। साहिल वर्मन के सिंहासनारूढ़ होने के बाद ब्रह्मपुर में चौरासी योगी आए जिन्होंने उसे दस पुत्र होने का आशीर्वाद दिया। इन जोगियों में एक चरपटनाथ था। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि मणिमहेश यात्रा तथा मिंजर आदि उत्सवों का श्रीगणेश उसी समय हुआ। साहिल वर्मन के समय ही नगर में पानी लाने के लिए रानी सूही की बलि दी गई।

सुनहरी धागों से बनी नवमंजरी या मिंजर उत्सव के प्रथम दिन मिठाई फलों के साथ बांटी जाती है। सर्वप्रथम यह नवमंजरी श्री लक्ष्मीनारायण तथा श्री रघुनाथ जी को भेंट दी जाती है। श्रावण मास के द्वितीय रविवार से तृतीय रविवार तक मिंजर

बांधी जाती है। इसके बाद इसे नदी में विसर्जित कर दिया जाता है।

मिंजर बनाने का कार्य यहां के मिर्जा परिवार द्वारा छह मास पूर्व आरंभ कर दिया जाता है। मिर्जा परिवार की ओर से ही सबसे पहले रघुनाथ जी को मिंजर भेंट की जाती है। कहा जाता है कि ये परिवार राजा पृथ्वी सिंह (1641) के समय दिल्ली से आया जो जरी गोटे के काम में प्रवीण था।

मिंजर मेला मनाए जाने के विषय में विभिन्न धारणाएं हैं। 'मंजरी महोत्सव' नामक एक पुस्तिका में इस उत्सव का आरंभ दसवीं शताब्दी में बताया गया है। राजा साहिल वर्मन के समय उनके गुरु चरपटनाथ ने इस उत्सव की योजना बनाई। एक अन्य धारणा है कि उत्सव वरुण देवता की पूजा के लिए मनाया जाता है।

किंवदंती यह भी है कि सदियों पहले इरावती नदी वर्तमान चंबा के चौगान से बहती थी। नदी की दाईं ओर चंपावती का मंदिर था तो बाईं ओर हरिराय मंदिर। एक साधु, जो चंपावती नगरी में रहता था, प्रतिदिन नदी पार कर हरिराय के दर्शन करने जाया करता था। तत्कालीन राजा साहिल वर्मन तथा नागरिकों ने साधु से आग्रह किया कि वे ऐसा उपाय करें जिससे सभी लोग सुगमता से हरिराय के दर्शन कर सकें। साधु ने सभी को चंपावती मंदिर के पास एकत्रित होने को कहा। वहां उन्होंने कुछ ब्राह्मणों को साथ लेकर एक यज्ञ किया जो सात दिन तक चला। सात रंग के धागों को मिलाकर एक रस्सी बनाई गई। इस सप्तवर्णी धागे को मिंजर कहा गया।

एक अन्य मान्यता के अनुसार चंबा का राजा प्रताप सिंह वर्मन (1559) कांगड़ा के राजा पर विजय प्राप्ति के बाद वापसी पर भटियात आया तो वहां के लोगों ने उसका स्वागत मक्की अथवा धान की मंजरियां भेंट कर किया। राजा ने इस भेंट को संभाल कर रखा। इस विजय में राजा को अपार संपत्ति प्राप्त हुई थी। विजय की खुशी में उत्सव मनाने की प्रथा आरंभ हुई। 'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल्ज स्टेट्स' में उल्लेख है कि राजा प्रताप सिंह वर्मन ने कटोच सेना को हराया और चड़ी तथा घ्रो को अपने अधीन कर लिया।

रियासती समय में इस उत्सव का प्रारंभ राजा द्वारा ही होता था। अब मिंजर स्थानीय प्रशासन द्वारा भेंट की जाती है। 1955 से स्थानीय प्रशासन द्वारा ध्वजारोहण के साथ इस उत्सव का आरंभ किया जाने लगा।

इस समय चंबा के चौगान में विभिन्न विभागों द्वारा प्रदर्शनियां लगाई जाती हैं। दिन में खेलों व खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है। मेले में बाहर से व्यापारी, छोटे दुकानदार तथा खेल-तमाशा दिखाने वाले भी आते हैं।

चौगान के एक किनारे भूमिगत कलाकेंद्र का निर्माण हुआ है जहां रात्रि

के समय सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं। प्रदेश तथा देश के सांस्कृतिक दल यहां कार्यक्रम देते हैं।

अंतिम दिन लोग अखंड चंडी महल में एकत्रित होते हैं। जहां से एक शोभा यात्रा निकलती है। श्री रघुवीर की प्रतिमा को पालकी में रखा जाता है जिसके साथ परंपरागत वादक, आधुनिक बैंड, प्रशासनिक अधिकारी तथा गणमान्य नागरिक चलते हैं। शोभायात्रा पुलिस लाइन से होती हुई रावी नदी के किनारे पहुंचती है। यहां सभी लोगों को एक-एक पान तथा इत्र भेंट किया जाता है। लाल रंग के कपड़े में नारियल, एक रुपया, फल और मिंजर रख करवा नदी में प्रवाहित किया जाता है। सभी लोग यहां अपनी-अपनी मिंजरों को जल में प्रवाहित कर देते है। मिंजर प्रवाहित करने के बाद शोभा यात्रा चौगान में वापस लौट आती है। रियासती समय में मिंजर विसर्जन के समय भैंसा भी प्रवाहित किया जाता था और चंपा के फूलों का इत्र बांटा जाता था। अब यह परंपरा समाप्त हो गई है।

मिंजर के दिनों पूरे सप्ताह घरों में 'कूंजड़ी' और 'मल्हार' के स्वर गूंजते हैं। सायं सांस्कृतिक कार्यक्रम से पूर्व भी ये गीत गाए जाते हैं। चंबा के गीत कर्णप्रिय हैं। इन दिनों इनकी स्वरलहरी पूरे नगर की हवा में समा जाती है।

मिंजर मेले में प्रेमी प्रेमिका इकट्ठे होते हैं। यह मिलन का अवसर है। मिंजर मेले पर मिंजर का गीत विशेष रूप से गाया जाता है।

मिंजर गीत (भौंरा) :लाल तेरा साफा

लाल तेरा साफा ओ भौंरा, मोरे केरी कलगी हो।
मोरे केरी कलगी ओ जानी, बणी बणी पुन्दी हो।
चिट्टा तेरा चोला ओ भौंरा, काला तेरा डोरा हो।
भाली भाली खिजी ओ जानी, रोई रोई सिजी हो।
राविया दे कण्डे ओ जानी, मोटरां चलो री हो।
मोटरां चली री ओ जानी, रौणकां लगी री हो।
चंबे रे चुगाना ओ जानी, बीजली बलो री हो।
मिंजरा लगो री ओ जानी, रौणकां लगो री हो।
मिंजरा रे मेले ओ जानी, बणी-तुणी जाणा हो।

--ए मेरे भंवरे! तेरा लाल साफा है जिसके ऊपर मोर की कलगी लगी हुई है। मोर की कलगी तूझे बहुत सज रही है। हे प्रेमी! तेरा सफेद चोला है जिस पर काला डोरा बंधा है। तूझे भाल भाल कर (इंतज़ार कर कर के) खिजती रही और रो रो कर भीगती रही। रावी के किनारे हे मेरी जान! मोटरें चली हुई हैं। मोटरें चली हुई हैं, रौनकें लगी

हुई हैं। चंबे के चौगान में बिजली जली हुई है। मिंजर का मेला लगा हुआ है, रौनकें लगी हुई हैं। मिंजरों के मेले में बण-ठण कर जाना है।

मिंजर मेले के अवसर पर कूंजड़ी मल्हार गीतों के गायन की परंपरा है। ये गीत श्रावण मास में गाए जाते हैं। ये विरह गीत हैं और हृदय विदारक होते हैं।

कूंजड़ी

उड़-उड़ कूंजड़िये, बरखा दे धियाड़े ओ।
मेरे रामा जिन्देयां दे मेले हो,
वे मना याणी मेरी जान।
उड़-उड़ कूंजड़िये, पर तेरे सूने बो मढ़ावां।
रूपे दीयां चूंजां हे,
वे मना याणी मेरी जान।
उड़-उड़ कूंजड़िये, चिकनी बुन्दा मेघ बरसे।
पर मेरे सिजे हो,
ओ मेरे रामा याणी मेरी जान।
उड़-उड़ कूंजड़िये, उच्चे पीपल पींगां पेईयां।
रल-मिल सखियां झूटन गईयां हो,
हो मेरे रामा याणी मेरी जान।
उड़-उड़ कूंजड़िये, जिन्दे रेहले फिरी मेलिले।
मुआ मिलदा न कोई हो,
वे मना याणी मेरी जान।

देव शोभा यात्रा

यात्रा अजेय मणिमहेश की

यात्रा नाम है अन्वेषण का।

यात्राएं जहां नए-नए दृश्य उपस्थित करती हैं, वहां नई खोज की एक दिशा भी निर्धारित करती हैं। भारतीय चिंतन में यात्रा का विशेष महत्त्व रहा है। पुरातन ऋषि-मुनि यात्राओं द्वारा अनेकानेक अनुभव खंडों से गुजरते हुए नाना प्रकार के भूदृश्य और आश्चर्यों से भरी पृथ्वी के दर्शन किया करते थे। यही परंपरा आज भी विद्यमान है पर्वत कंदराओं में। ये यात्राएं जारी हैं एक परंपरा और धर्मयात्रा के रूप में। हिमाचल प्रदेश में कैलास परिक्रमा, मणिकर्ण यात्रा, मणिमहेश यात्राएं प्रसिद्ध हैं। यह भी है कि ये सभी यात्राएं आदि देव शिव के निवास की ओर अग्रसर होती हैं।

यात्रा में धण-छो

ऐसी एक यात्रा का प्रारंभ चंबा से होता है। मणिमहेश यात्रा के लिए हर समय नहीं निकला जा सकता। इस यात्रा की तिथि व विधि विधान निश्चित है।

यह यात्रा चंबा से राधा अष्टमी के लिए निकलती है। राधा अष्टमी श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के पंद्रह दिन बाद आती है। राधा अष्टमी को ही मणिमहेश मणिमहेश

झील में पवित्र स्नान होता है। यात्रा लंबी तथा पड़ाव दर पड़ाव होने के कारण राधा अष्टमी से एक सप्ताह पहले ही आरंभ हो जाती है।

चंबा से प्रारंभ होने वाली इस यात्रा को 'छड़ी यात्रा' कहते हैं। चंबा के प्रसिद्ध लक्ष्मी नारायणमंदिर के नीचे चरपट मुहल्ले के चरपटनाथ मंदिर से यह यात्रा आरंभ होती है। चरपट नाथ मंदिर का पुजारी छड़ी ले कर चलता है। साथ में दसनामी अखाड़े के स्वामी और साधु भी चलते हैं। चरपटनाथ मंदिर के पुजारी और अखाड़े के साधुओं में कई बार इस यात्रा में पहल करने के लिए झगड़ा भी होता है। दसनामी अखाड़े के साधुओं के पास मैहला और भरमौर में ज़मीन जायदाद है। यह यात्रा पड़ाव पड़ाव चलती हुई जुलाकड़ी, राख, दुर्गठी, भरमौर, हड़सर, धणछो में रूकती है मणिमहेश पहुंचती है।

शिव स्तुति गाता हुआ यात्रा समूह भी इनके साथ हो लेता है। ''शिव कैलासों के वासी, धौलीधारों के राजा : संकर संकट हरणा'' गाते हुए यात्री भैंरो घाटी और फूलों की घाटी से गुजरते हैं।

पहले समय में सैंकड़ों की संख्या में यात्री भाग लेते थे अब हजारों की संख्या में दूर दूर से यात्री आते हैं।

जहां मणि के समान सूर्य उगता है

चंबा से यात्रा आरंभ हो कर राख और खड़ामुख होती हुई भरमौर पहुंचती है। भरमौर में मणिमहेश मंदिर तथा चौरासी सिद्धों के दर्शन हेतु कुछ लोग रात्रि विश्राम भी करते हैं। वास्तव में भरमौर से वास्तविक यात्रा प्रारंभ मानी जाती है जहां से आगे कई लोग नंगे पांव चलते हैं। भरमौर से आगे हड़सर तक सड़क मार्ग है। गाड़ियां हड़सर तक जाती हैं। हड़सर से आगे सीधी और खड़ी चढ़ाई है।

हड़सर से लगभग सात किलोमीटर धणछो शिव की तपोस्थली माना जाता है। मणिमहेश स्नान से पूर्व धणछो में स्नान भी पवित्र माना जाता है। मणिमहेश झील से पहले गौरी कुंड आता है। विश्वास है कि यहां शिव पार्वती स्नान किया करते थे। इस कुंड में अब महिलाएं स्नान करती हैं।

कुछ लोग जन्माष्टमी को भी झील में स्नान करते हैं जो जम्मू और भद्रवाह से आते हैं। इस ओर से बहुत संख्या में लोग स्नान के लिए आते हैं। किंतु पवित्र स्नान राधा अष्टमी को ही होता है।

मणिमहेश झील में मुहूर्त के अनुसार स्नान किया जाता है। मुहूर्त राधा अष्टमी की रात्रि या प्रातः निकलता है। ऐसा भी विश्वास है कि जब स्नान का मुहूर्त होता है झील का पानी अपने-अपने आप ऊपर चढ़ना शुरू हो जाता है। प्रायः स्नान के दिन वहां बर्फ गिरनी आरंभ हो जाती है।

झील में मणिमहेश के गूर या चेले अंगारे खाते हुए बर्फानी झील को तैरते हुए पार करते हैं। उस समय वे ट्रांस में आए माने जाते हैं। गूर के झील के पार पहुंचते ही लोग उसे छूने के लिए दौड़ते हैं। जो गूर को पहले छू ले, वह सब से पहले 'पुच्छ लेने' या प्रश्न पूछने का अधिकारी माना जाता है।

हिमाचल प्रदेश जनगणना रपट 1961 (मेले और त्योहार) में उल्लेख है कि रियासती समय में गूर या चेले को सब से पहले छूने का अधिकार चंबा के राजकुमार को होता था और वही सब से पहले प्रश्न पूछ सकता था। उस समय रियासती राज की ओर से छत्तीस बकरे काटे जाते थे। बाद में मंदिर कमेटी की ओर से चार बकरे कटने लगे। अब बलि प्रथा पर प्रतिबंध लग गया है।

मणिमहेश स्नान के समय

अजेय है मणिमहेश

बर्फीले मणिमहेश पर्वत के पीछे प्रातःकालीन सूर्य मणि के समान चमकता है। इसीलिए इसे मणिमहेश कहा जाता है। मणिमहेश पर्वत पर बारह महीने बर्फ रहती है। मणिमहेश स्नान के समय भी पर्वत के नीचे झील में बर्फ गिरती है। झील के ठीक सामने यह पर्वत एकदम पास दिखता है। लगता है ऊपर चढ़ने लगो तो एकदम चोटी पर पहुंच जाएंगे। किंतु इस पर्वत पर कोई चढ़ नहीं पाया।

मणिमहेश कैलास में दो मानव आकृतियां नज़र आती हैं जिन्हें साधु और गद्दी माना जाता है। जनास्था है कि साधु और गद्दी, दोनों कैलास तक पहुंचना चाहते थे। किंतु दोनों ही बर्फ में जम गए और शिलाएं बन गए। किंवंदति है कि एक गद्दी कैलास पहुंचने का संकल्प लिए सीढ़ियां चढ़ता गया। बर्फ की एक सीढ़ी चढ़ने पर वह मेमने की बलि दे देता। अंत में मेमने ख़तम हो गए और वह वहीं बर्फ कर शिला बन गया।

यह किंवंदति एक सच्चाई है। स्थानीय युवकों ने कई बार इस पर चढ़ने का प्रयास किया। अधिकांश वापिस नहीं लौटे। सन् 1968 में भारत-जापानी महिलाओं ने नंदिनी पटेल के नेतृत्व में चढ़ने का अभियान किया। भूस्खलन होने से कुछ लोगों की मृत्यु हो गई, कुछ लोग कठिनाई से जान बचा पाए। इस क्षेत्र में भूस्खलन अधिक होते हैं। मणिमहेश स्नान के दिनों के भी तूफान और भूस्खलन से कई लोगों की मौत हो जाती है।

मणिमहेश स्नान

31 अगस्त 1995 में जब मैं मणिमहेश गया था तो स्नान के समय प्रातः ही बर्फ पड़नी शुरू हो गई थी। वापिसी पर लगातार बारिश होती रही। तीन सितम्बर की रात हम चंबा में वन विभाग के रेस्ट हाउस में ठहरे थे तो पूरी रात बारिश होती रही। यह ग़नीमत थी कि चार सितंबर की सुबह हमारे वहां से निकलते ही रास्ता बंद हो गया था। चंबा का एकमात्र सस्पेंशन पुल क्षतिग्रस्त हो गया। चंबा जिले में करोड़ों की क्षति हुई और कई लोग मारे गए। गाड़ी खराब होने के कारण रात हमें ढुंढियारा रुकना पड़ा। वहीं इस दुर्घटना का पता चला। चंबा पर किताब लिखनी थी, इसलिए हम जीवित बच निकले।

वास्तव में मणिमहेश के शिखर पर चढ़ाई कठिन है क्योंकि पर्वत में पकड़ नहीं बन पाती। प्रायः मौसम ख़राब रहता है और कभी भी भूस्खलन होते रहते हैं। इस सीधे और खड़े पर्वत कर संरचना पर्वतारोहण के अनुकूल नहीं है। बर्फ के नीचे चट्टानें मजबूत नहीं है अतः कभी भी खिसक जाती हैं। यह पर्वत अभी तक अजेय है।

जातर या जातरा

हिमाचल के विभिन्न स्थानों में जातर या जातरा का आयोजन होता है। जातर या जातरा का संबंध धार्मिक यात्रा से है। धार्मिक मेलों को भी जातरा कहा जाता है। मंडी शिवरात्रि को लोकगीतों में 'जातरा' कहा गया है। अपने कुल देवता या किसी भी देवता के पास सामूहिक रूप से जाना जातर है।

यूं तो जिला चंबा में अनेक जगह जातर होती है जैसे भरमौर जातर, कुगति जातर, साहो जातर। बहुत सी जातरों में स्नान भी होता है अतः उन्हें 'न्हौण' भी कहा जाता है जैसे त्रिलोचन महादेव न्हौण। कुछ न्हौण धौलाधार तथा चंबा के पर्वतों और झीलों में होते हैं। इन झीलों को स्थानीय भाषा में 'डल़' कहते हैं और ऐसे स्नान को 'डल़ न्हौण'।

चंबा नगर की बात करें तो पुराने समय में चंपावती मंदिर में जातर होती थी जिसे चमेसणी जातर कहते थे। अब ये जातर नहीं मनाई जाती। इसी प्रकार एक जातर 'चूहे-बिल्ली' की जातर भी होती है, जो अब नहीं होती।

रथ-रथणी जातर

रथ-रथणी जातर चंबा में भ्रादमास की पूर्णिमा को मनाई जाती है। भस्मासुर को भगवान शकंर द्वारा बचाने और भस्म करने की पौराणिक कथा का मंचन कर इस जातर को मनाया जाता है।

भस्मासुर को भगवान शंकर ने वरदान दे रखा था कि कोई उसे मार नहीं सकेगा। अमरत्व का वर पा कर भस्मासुर मदांध हो गया। वह देवी पार्वती पर आसक्त हो गया और शंकर को ही मारने दौड़ पड़ा। शंकर भागते-भागते विष्णु के पास जा पहुंचे। भस्मासुर भी वहां जा पहुंचा। शंकर को बचाने के लिए विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर लिया। भस्मासुर अब मोहिणी पर आसक्त हो गया और प्रणय निवेदन करने लगा। मोहिनी ने भस्मासुर का नृत्य के लिए आवाहन किया। दोनों ने नृत्य आरंभ किया और तरह-तरह की भाव भंगिमाएं बनाने लगे। भस्मासुर मोहिनी की तरह नृत्य करने लगा। मोहिनी ने भस्मासुर को छलने के लिए अपने सिर पर हाथ रख लिए। मोहिनी को देखते हुए भस्मासुर ने भी अपने सिर पर हाथ रख लिए। फलतः वह पल भर में भस्म हो गया।

इस प्रसंग को दोहराते हुए रथ-रथणी जातरा का आयोजन किया जाता है।

हरिराय मंदिर

हरिराय मंदिर में भस्मासुर का रथ सजाया जाता है। रथ के चारों ओर पचास से सौ गज कपड़ा लपेट कर रथ की पूजा की जाती है। इसे मंत्र द्वारा जीवन दान दे कर बकरे की बलि दी जाती थी जो अब बंद कर दी गई है।

इसी तरह त्रिपुर सुंदरी मोहिनी की मूर्ति को शृंगारित कर एक पालकी में स्थापित किया जाता है। इसे रथणी कहते हैं।

सूर्य छिपने से पहले लक्ष्मीनारायण मंदिर से पालकी में रथणी को चौगान में लाया जाता है और हरिराय मंदिर से भस्मासुर का रथ भी चौगान में लाया जाता है। दोनों का एक-दूसरे से मिलन होता है। इसके बाद रथणी को चंपावती मंदिर व नगर में घुमा कर पुनः चौगान में लाया जाता है। उसी समय चौगान मे एकत्रित लोगों की भीड़ भस्मासुर के रथ को तोड़ देते हैं और उसके चारों ओर लपेटे सफेद कपड़े को भी तार तार कर लूट लेते हैं। इस कपड़े के टुकडों को लोग अपने घरों में प्रसाद स्वरूप ले जाते हैं और पूजा स्थल में रखते हैं।

चौंडी जातर

चंबा नगर के ठीक ऊपर पहाड़ी पर चामुंडा देवी का मंदिर है जिसे चौंडी मंदिर भी कहा जाता है। मंदिर में देवी की पाषाण प्रतिमा है।

वैशाख के मास में यहां जातर होती है जो दो दिन तक चलती है। पहले दिन छोटी जातर और दूसरे दिन बड़ी जातर। इस जातर में स्थानीय नगरवासी और दूर दूर के गांवों से भी लोग आते हैं। इस जातर में चुराह के बैरा नामक स्थान से

बेरेवाली भगवती दुर्गा का चंबा आगमन होता है। देवी के सम्मान में यह जातर मनाई जाती है। यह माना जाता है बेरेवाली भगवती चंबा की चौंडा देवी या चामुंडा देवी की बहन है। भगवती सर्दियों के बाद प्रतिवर्ष वैशाखी को अपनी बहन से मिलने चंबा आती हैं। भगवती का पुजारी देवी का मुखौटा कंधे पर उठा कर देवीकोठी से पांच दिन की पैदल यात्रा कर चंबा पहुंचता है। पुजारी के साथ देवी का चेला, तीन चार सहायक और पूरा बाजा चलता है। देवी चंबा के चामुंडा के मंदिर में दस दिन तक रहती हैं। इस तरह दोनों बहनों का वर्ष में एक बार मिलन होता है। देवियों को प्रतिदिन भोग लगाया जाता है और स्वादिष्ट व्यंजन बना कर खिलाए जाते हैं। इन्हें पारंपरिक भोजन पिंदड़ी का भोग लगाया जाता है। पिंदड़ी कोदरे के आटे के लड्डू होते हैं जो पुरातन भोज में प्रयोग किए जाते थे।

देवियों के मिलन के अंतिम दो दिन विशेष आयोजन होते हैं। चामुंडा मंदिर में जातर लगती है और दूर-दूर से लोग आते हैं। क्योंकि देवी चुराह से आई होता है अतः चुराही लोग चंबा आ कर अपना नृत्य करते हैं। स्थानीय महिलाएं घुरेई नाचती और गाती हैं। अंतिम शाम बकरे की बलि दी जाती थी जो अब बंद कर दी गई है। देवी का चेला भावावेश में आ जाता है और उपस्थित लोगों का अपना आशीर्वाद देता है।

इस तरह बेरेवाली भगवती दस दिन यहां व्यतीत कर अपने गांव लौट जाती हैं।

लोहड़ी उत्सव

यूं तो लोहड़ी का पर्व पूरे उत्तरी भारत में उत्साह से मनाया जाता है, चंबा नगर में इसके मनाए जाने का ढंग अनूठा रहा है। कांगड़ा व पंजाब की भांति यहां सुंदर मुंदरिए या दुल्हा भट्ट्ी के गीत न गा कर लोहड़ी की अपनी परंपराएं निभाई जाती हैं। दूसरी विशेषता है कि यह उत्सव केवल चंबा नगर में ही मनाया जाता रहा है। राजाओं के समय में इस उत्सव की धूम थी।

पौष मास की संक्रांति को चंबा शहर को चौदह भागों में बांट दिया जाता। हर भाग को 'मढ़ी' कहा जाता। मढ़ी में एक मुहल्ला शामिल होता था। हर मढ़ी से एक मुखिया चुना जाता जिसे 'सरझाडू' कहा जाता। प्रत्येक मढी में दस-पंद्रह लड़के सदस्य बन जाते। ये लड़के घर-घर जा कर लकड़ियां मांग कर इकट्ठा करते। लकड़ियां मांगते समय आंगन में खड़े हो कर लड़के गीत गाते है। एक लड़का मुख्य स्वर में बोलता और बाकि 'घेरणी' का उच्चारण करते :

इक घड़ी बिच परबत लाणा
घेरणी.....
चूड़ियां दा छज्ज पराणा
घेरणी.....
जुलाह गलांदा झुट्टी मुट्ठी
घेरणी.....

वर्षा हो तो लड़के घर-घर जा कर मक्की के दाने गाते हुए मांगते। मक्की मांगते हुए मुख्य स्वर के बाद 'घांणदे' बोला जाता :

खड्डे खाणे
घांणदे....
मढ़ी पुजाणे
घांणदे....
शिबा जो चढ़ाणे
घांणदे....
तुसां जो खुआणे
घांणदे....
टूट मटूटा
कुकड़ी री माणी सुट्टा।

जहां लकड़ी या मक्की देने में आनाकानी की जाती वहां यह गीत गाया जाता :

जंदरे उप्पर जंदरा ए घर चंदरा।

अर्थात् ताले के ऊपर ताला, यह घर चंदरा या चालाक।

इस तरह पूरे महीने लकड़ियां इकट्ठी कर सरझाडू के घर में रखी जातीं। मक्की के दाने उसी समय भून कर बांट दिए जाते। प्रतिदिन लकड़ियां ला कर एक स्थान पर जमा कर दी जातीं। इस में पत्तियां डाल कर आग लगा दी जाती और लड़के 'हाख मटीटू' खेलते। इस खेल में एक लड़के की आंखें बंद कर उसके हाथ आगे करवा दिए जाते और दूसरे लड़के उसके हाथ पर मारते। यदि लड़का किसी को पहचान ले तो उसकी आंखें बंद करवा दी जातीं।

छुट्टी के दिनों में दूर के गांवों से भी अनाज मांगा जाता जिसे बेच कर पैसे इकट्ठे कर लिए जाते। इस तरह लकड़ी इकट्ठा और अनाज मांगने का सिलसिला पौष मास के अंतिम दिनों तक चलता। अंतिम तीन दिन को छोड़ इसे बंद कर दिया जाता।

लोहड़ी के दो दिन पहले 'निक्का' जागरा यानि छोटा जागरा और एक दिन पूर्व बड्डा अर्थात् बड़ा जागरा मनाया जाता। दोनों जागरों के दिन मक्की के दाने मांग कर भून के दिन खाए जाते। दोनों जागरों कर आग भी जलाई जाती। निक्के जागरे में लगभग आधी रात तक और बड्डे जागरे में पूरी रात आग जला कर लड़के गाते बजाते रहते। इन रातों में पहले से एकत्रित की लकड़ियां जलाई जातीं।

बड़े जागरे के बाद सभी तड़के ही पूरी मढ़ियों में मांगने निकल जाते और पैसे इकट्ठे करते। मांगते समय सभी ये गीत गाते हैं :

होंकर-होंकर गभरूओ! काठोरा
पंजे बह्ने भानौरा
इक रूपय्या राखोरा
देओ जी टका धेली।

मांगने के बाद दोपहर को सभी जन अपनी-अपनी मढ़ियों में लौट आते।

लोहड़ी मनाने के लिए बड़ी बड़ी मशालें ली जातीं। इन मशालों को 'मुसारा' कहा जाता है। राजाओं के समय में लकड़ियों का प्रबंध राजा की ओर किया जाता था। अब नगरपालिका लकड़ियों की व्यवस्था करती है। मुसारे जलाने के लिए सातों मढ़ियों को लकड़ियां और बजाने के लिए नगारे दिए जाते हैं। सात मढ़ियां पुरुषों की और सात महिलाओं की मानी जाती हैं।

सब से बड़ी मढ़ी राजा की मढ़ी मानी जाती थी जो सुराड़ा मुहल्ला में है। उसके बाद वज़ीर की। उसके बाद कोतवाल। राजा की मढ़ी त्रिमुखी, वज़ीर की दोमुखी और शेष एकमुखी।

पुराने समय में सबसे पहले राजा का मुसारा चलता था। मंत्रोच्चारण के साथ बलि भी दी जाती थी। यहां से मशालों के साथ लोग वज़ीर की मढ़ी चौंतड़ा में पहुंचते थे। राजा का मुसारा सबसे आगे, वज़ीर का उसके पीछे। ये सब कोतवाल की मढ़ी द्रोबी मुहल्ले में पहुंचते। यहां एक बड़ा घियाना जलाया होता है जिसमें तीन बार राजा का मुसारा झोंका जाता है। उसके बाद वज़ीर और फिर कोतवाल का। इसके बाद सभी मुसारे ले कर चौगान में पहुंचते हैं और चौगान के लाहौरख़ाना मढ़ी के घियाने में राजा के मुसारे को डाल दिया जाता है। अब लोग अपना अपना मुसारा डालने के लिए संघर्ष करते हैं। जो ताकतवर हैं, वह अपना मुसारा पहले वहां डाल देते हैं। सभी लोग इस घियाने को छूने का प्रयास करते हैं। दूसरे को पास नहीं फटकने देते। एक तरह की लड़ाई शुरू हो जाती है। किंतु राजाओं के समय में इस समय हुए झगड़े में किसी के खिलाफ कोई मामला दर्ज नहीं होता था। इस आड़ में लोग अपनी व्यक्तिगत दुश्मनी भी निकाल लेते थे।

मशालों के दौरान लोहड़ी मनाना चंबा शहर की एक विशेषता रही है। अब इस तरह की परंपराएं समाप्त होती जा रही हैं।

गद्दी जनजाति

कालांतर में भरमौर से चंबा तक राज्य विस्तार के साथ गद्दी जनजाति भी भरमौर से चंबा के आसपास ऊंची पहाड़ियों तक फैली। चंबा की सेना को गद्दी सेना कहा जाता था। गद्दी एकमात्र ऐसा घुमक्कड़ कबीला है जो स्थायी निवास होने पर भी पूरा साल अपनी भेड़ बकरियों के साथ चलता रहता है।

हिमाचल प्रदेश का गद्दी समुदाय घर होते हुए भी खुले आसमान के नीचे सोने वाला एकमात्र आदि कबीला है। भेड़ों के साथ रहने वाले 'पुहाल' को तो नित-मुसाफिर कहा जाता है, क्योंकि वह छह ऋतुएं बारहों महीने भेड़ों के साथ चलाता रहता है। गर्मियों के कुछ महीने गद्दी परिवार अपने मूल निवास 'गधेरन' या 'गदेरन' में बिताते हैं। इन दिनों घर-घर में 'सुर' लगाई जाती है, उत्सव मनाया जाता है। बसोआ, वैशाखी का त्यौहार मनाया जाता है। इन परिवारों का सितंबर आते-आते पुनः (गधेरन) से जांधर (कांगड़ा) की ओर प्रस्थान हो जाता है।

गद्दी शब्द संस्कृत के 'गड्डरः' से जोड़ा जाता है जिसका अर्थ भेड़ है। सभी गद्दी भेड़ पालक हैं।

भरमौर के लोग आज प्रवासी हुए हैं। कोई वहां स्थायी रूप से नहीं रहता। किंतु सन् 680 में भरमौर 'ब्रह्मपुर' नाम से जाना जाता था। उस समय वहां अद्वितीय मंदिरों, मूर्तियों का निर्माण हुआ। मूर्तियों पर खुदे लेख, शिलालेख, ताम्रपत्र उज्ज्वल अतीत के प्रतीक हैं। मणिमहेश मंदिर, लक्षणादेवी भरमौर, शक्ति देवी छतराड़ी, मृकुला देवी उदयपुर इस अनूठी वास्तुकला के उदाहरण हैं।

गद्दी जनजाति हिमाचल प्रदेश में एक विशिष्ट जनजाति है जो शारीरिक संरचना, संस्कृतनिष्ठ भाषा, विशिष्ट वेशभूषा के कारण अपना एक अलग अस्तित्व रखती है। इस जनजाति का मूल क्या रहा होगा, यह निश्चित तौर से नहीं बताया जा सकता।

गद्दी अपने को मैदानों से आया हुआ बताते हैं। 'ए ग्लोसरी ऑफ द ट्राईब्ज एंड कास्ट्स' में उल्लेख है कि राजा अजय वर्मन के समय कुछ चौहान राजपूत तथा गद्दी ब्राह्मण मैदानों से पलायन कर यहां आए। कुछ राजपूत और खत्री औरंगजेब के समय मैदानों से इस ओर भागे। यहां अजय वर्मन का समय सन् 850-70 दिया गया है जो सही नहीं है। 'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल्ज स्टेट' में अजय वर्मन का

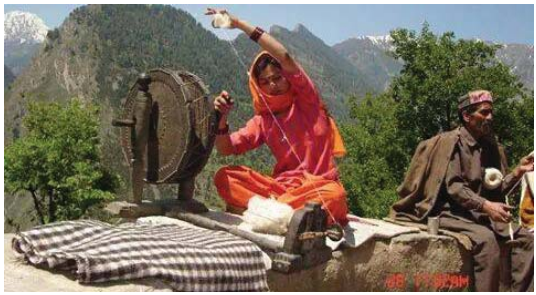

ऊन कातते गद्दी गद्दण

कार्यकाल सन् 760 दिया है, जो सही प्रतीत होता है, यहां भी गद्दी ब्राह्मणों तथा राजपूतों का दिल्ली से आने का उल्लेख है।

कुछ गद्दियों का विश्वास है कि वे राजा पृथ्वीसिंह (1641-1664) के समय लाहौर से यहां आ कर बसे।

यह मान्यता भरमौर (पुरातन ब्रह्मपुर) में गद्दियों की वास्तविक भूमि गधेरन होने से मेल नहीं खाती। यहां के मंदिरों, वास्तुकला, मूर्तिकला को देखकर प्रमाणित होता है कि ब्रह्मपुर एक संपन्न राज्य था। ब्रह्मपुर का इतिहास आदित्य वर्मन (सन् 620) से पहले 'मारू' तक जाता है।

पुरातन राज्य ब्रह्मपुर राजा साहिल वर्मन (सन् 920) के समय राजधानी चंबा स्थानांतरित होने से उपेक्षित हो गया। बाद में गद्दियों की प्रवासी प्रकृति के कारण भी वह सूना-सूना रहने लगा। संभवतः तभी चंबा गजेटियर में (1904) भरमौर की जनसंख्या 1901 की जनगणना के अनुसार मात्र 4,343 बताई गई है क्योंकि सर्दियों में सभी गद्दी अपनी भेड़-बकरियों के साथ कांगड़ा या मैदानों में चले गए होंगे। घरों में बूढ़े लोग ही बचे होंगे। अन्य स्रोत के अनुसार वास्तविक जनसंख्या 33,907 थी।

क्या गद्दी लोग पहले से ही प्रवासी थे और भेड़-बकरी पालन के कारण मात्र गर्मियों में ही भरमौर आते थे। इनके व्यवसाय, रहन-सहन तथा परंपराओं और देवी-देवताओं के अस्तिव से ऐसा ही प्रतीत होता है। गर्मियों में अपनी भेड़-बकरियों के 'धण' के साथ कुछ धौलाधार से कांगड़ा की ओर चले जाते हैं तो कुछ 'साच' दर्रे, 'कुगति' दर्रे या अन्य मार्गों से पांगी तथा लाहौल की ओर। अतः गद्दियों का पंगवालों और विशेषकर लाहुलों से संबंध रहा है। सुन्नी-भुंकू जैसी प्रेम कथाएं बनीं, केलांग जैसे देवता यहां आए।

गद्दी लोग आज भी आग जलाने के लिए चकमक पत्थर का इस्तेमाल करते

हैं। कुल्लू, किन्नौर तथा लाहौल की भांति बलि देते हैं, कई प्रकार के विश्वासों (या अंधविश्वासों) मान्यताओं से ग्रसित हैं। उनकी अपनी अलग वेशभूषा है, भाषा है। यह जनजाति यहां की मूल जनजाति है। यदि ये दिल्ली या मैदानों से आए होते तो इनमें इतना कुछ अलग नहीं होता। अलबत्ता बाद में बहुत से लोग मुस्लिम काल में धौलाधार की ओर पलायन करते रहे जो चंबा या आसपास के लोगों में घुल-मिल गए होंगे।

जातियां

गद्दियों में चार प्रमुख जातियां हैं ब्राह्मण, खत्री, ठाकुर या राठी तथा अन्य। ब्राह्मण तथा खत्री राजपूत यज्ञोपवीत धारण करते हैं। ठाकुर या राठी यज्ञोपवीत नहीं पहनते। अन्य जातियों में कोली, रिहाड़े, लोहार, बाढी, सिप्पी तथा हाली आते हैं जिन्हें गद्दी लोग अपनी तरह गद्दी नहीं मानते।

वर्ग कई गोत्रों में विभक्त है। ब्राह्मण, खत्री आपस में विवाह संबंध कर लेते हैं। विवाह के लिए यज्ञोपवीत धारण करने वाली या न करने वाली भी कोई शर्त नहीं है।

अन्य जातियां या तो खेती करती हैं या शिल्पकार हैं। कहीं-कहीं कोली तथा सिप्पी को एक ही समझा जाता है। कपड़े बुनना और खेती करना इनका कार्य है। रिहाड़े पीतल के बरतन या जेवर बनाते हैं, लोहार लोहे का काम करते हैं, बाढी लकड़ी का, हाली हल जोतते हैं। ये जातियां संभवतः इस ओर बाद में आईं अतः अछूत मानी जाने लगीं। गद्दी वर्ग ने इन्हें अपने भीतर नहीं माना।

ब्राह्मण, खत्री, ठाकुर या राठी ब्राह्मणों के समान अपने गोत्र रखते हैं। कुछ स्थानों के नाम तथा शारीरिक विकलांगता के नामों पर भी गोत्र बने जैसे भटियात के ब्राह्मण 'भाट' हुए, एक हाथ वाला डंडू हुआ। घुलने अर्थात् पहलवानी करने से कोई घुलेटू हुआ तो लूण या नमक का काम करने वाला लूणेसर।

उत्सव की तैयारी

ब्राह्मण, राजपूत, राठी ये उच्च समझे गए क्योंकि ये लोग यहां पहले से रह रहे थे। हल जोतने वाले या शिल्पी जो बाहर से आए, निम्न हो गए। हल जोतने वालों पर राजपूतों या राजाओं का अधिकार रहा, इसलिए वे निम्न कोटि के कामगार कहलाए।

भरमौर में या कांगड़ा के ऊपरी भाग, पालमपुर की धौलाधार के नीचे रहने वाले सभी व्यक्तियों को 'गद्दी' ही कहा जाता है। वे चाहे ब्राह्मण हों, राजपूत हों, राठी हों या खत्री। खत्री और महाजन अब एक व्यापारी जाति है जो दुकानदारी करते हैं। पुरातन खत्री राजपूत बने। यह संभवतः खत्री की 'क्षत्रिय' से व्युत्पत्ति के कारण रहा होगा। गद्दी खत्री, मैदानों से आए खत्री महाजनों से, जो व्यापारी हैं, भिन्न हो सकते हैं।

ब्राह्मणों में वशिष्ठ, गौतम, अत्रि, भारद्वाज आदि, खत्रियों में रतनपाल, अत्री, भारद्वाज आदि जातियां हैं। किंतु गोत्रों में 'अलों' से वर्गीकरण हुआ और इन्हीं से वे अपनी जातियां समझ बैठे। जैसे जुआरी 'जुक्' चुप रहने वाले 'चुपेटु', नाक से बोलने वाले 'गुन्ना', अफीमची 'अमलेतु' काले रंग वाले 'कपूर', मुक्केबाज, 'मकरातु', कहलाए। डॉ. विलियन निविल ने 'रिपोर्ट आन शैड्यूल कास्ट्स एंड शैड्यूल ट्राइब्ज' में तीन सौ 'अलों' की सूची दी है।

राहुल जी ने लिखा है :

जलंधर खंड में किनौर, स्पिति दोनों लाहुल, पंगी और धेरन के लोगों को उनके निवास स्थान और जातीय-विशेषता के कारण हम सीमांती या जनयुगीन जातियां कह सकते हैं। इनमें से कुछ के बारे में विशेष रूप से यहां लिखते हैं : गद्दी-गद्दी वस्तुतः एक जात का नहीं, बल्कि एक इलाके के रहने वाले ब्राह्मणों, राजपूतों, क्षत्रियों, ठाकुरों और राठियों का नाम है, जिनमें सबसे अधिक संख्या खत्रियों की है। पंजाब में भी खत्री शब्द क्षत्रिय से वैसे ही बिगड़कर बना है, जैसे नेपाल में खत्री। इसलिए गधेरन के क्षत्रियों के उद्गम के लिए हमें पंजाबी खत्रियों की ओर निगाह डालने की जरूरत नहीं। बाहर के लोगों ने गद्दी का जो अर्थ लगा रखा है अर्थात् एक भेड़ चराने वाली हीन जाति, उसके कारण गधेरन के लोग अपने को गद्दी न कहकर ब्राह्मण, राजपूत, खत्री आदि कहते हैं। और जनगणना में भी उसी तरह लिखवाते हैं। वह गद्दी मुख्यतः चंबा जिले के ब्रह्मौर वजारत (तहसील) में मिलते हैं, लेकिन, उनमें से कितने ही चराने की सुविधा के कारण अपनी दक्षिणी सीमा घौलाधार के घाटों को पार कर कांगड़ा जिले के गाइरों (बुकियालों) के लिए उधर भी चले गए हैं। गधेरन (चंबा) के रहने वाली जातियों के गोत्र फकरू, घोरू (राजवंशी), घुलेटू (पहलवान), भजरेटू (भारवाहक), गाहरी (चरवाहे), अदापी, लुनेसर (नमक-रोजगारी), काहनघेरू (कांघी रोजगारी), पालनू आदि होते हैं। गद्दी लोग शरीर से बहुत स्वस्थ,

रंग से बहुत गोरे और स्वभाव से सीधे-सादे तथा आत्मसम्मान के पुतले होते हैं। वह उत्सवप्रिय हैं, गाना-नाचना उन्हें बहुत पसंद है। भेड़ों को लेकर वह धौलाधार, पांगीधार या जांस्करधार की ऊंची चरागाहों (गाहरों) में साल के बहुत-से महीने बिताते हैं। उनकी आजीविका का साधन खेती और भेड़-बकरी पालना दोनों हैं। जाड़ों के दिनों में वह अपनी भेड़-बकरियों को लेकर नीचे की ओर चले जाते हैं। घर के पुरुष बारी-बारी से भेड़-बकरियों के साथ बाहर रहते हैं, बाकी लोग गांवों में रहकर खेती और ढोरों को देखते हैं। गद्दी धौलाधार के दोनों तरफ बसते हैं, इसलिए उनके खेत भी चंबा और कांगड़ा दोनों जिलों में हैं। कांगड़े में जाड़े की फसल काटकर ब्रह्मौर (गदरान) में जा अपनी गर्मियों की फसल काटते हैं।

वह अक्तूबर-नवंबर में कांगड़े की ओर जाते हैं और अप्रैल-मई में ब्रह्मौर लौटते हैं। गद्दियों की ईमानदारी के लिए कहावत मशहूर है 'गद्दी मित्तर भोला, दिन्दा टोप तो मंगदा चोला।'

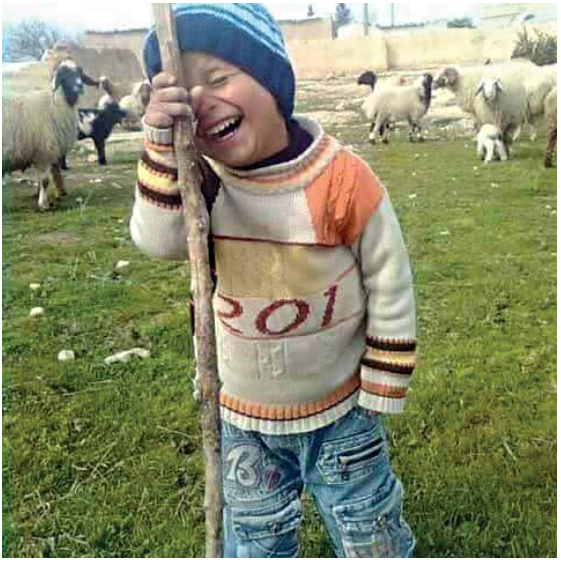

भेड़ों-संग जारी है मस्ती

चंबयाल़ी एवं गदयाल़ी भाषा

गद्दियों की भाषा को गादी, गदयाल़ी या भरमौरी कहा जाता है। चंबा की चंबयाल़ी, चुराह की चुराही और पंगवाल की पंगवाली कहलाती है।

चंबयाल़ी अपेक्षाकृत सरल सुगम है। यह कांगड़ा, नूरपुर से मिलती है। जबकि संस्कृतनिष्ठ गादी यहां की मूल भाषा है।

हिमाचल प्रदेश में अधिकांश बोलियों को उनके रियासती समय में राज्य के नाम से जाना जाता है। जैसे कहलूर की कहलूरी, हण्डूर की हण्डूरी, कांगड़ा की कांगड़ी, कुल्लू की कुल्लूवी, बघाट की बघाटी, मंडी की मंडयाल़ी, चंबा की चंबयाल़ी। रियासतों के विभाजन की तरह इन बोलियों में भी थोड़ा बहुत अंतर आता गया। चंबा के साथ कांगड़ा की सीमा होने तथा पठानकोट के करीब होने से इस बोली पर कांगड़ा का ज्यादा और पंजाबी का कम प्रभाव रहा। गदयाल़ी क्योंकि दुर्गम पहाड़ी इलाके में रही, अतः अधिक सुरक्षित रही।

जिला चंबा में जनजातीय क्षेत्र भरमौर में गद्दियों की गदयाल़ी, पांगी में पंगवाली बोली जाती है। चुराह क्षेत्र की बोली चुराही कहलाती है। चंबा व इसके आसपास की बोली को चंबयाल़ी कहा जाता है। मोटे तोर पर पूरे जिले की बोली को भी चंबयाल़ी कह दिया जाता है। वैसे भी चंबयाल़ी धौलाधार की पहाड़ियों तक बोली जाती है। चंबा की सीमा कांगड़ा की धौलाधार पहाड़ियों से ले कर लाहौल के उदयपुर तक रही है।

भाषा शास्त्रियों के अनुसार पहाड़ी, जिसका उद्भव दरद पैशाची या शौरसेनी प्राकृत से माना गया, की तीन शाखाएं मानी गई हैं : पूर्वी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी तथा पश्चिमी पहाड़ी। पूर्वी पहाड़ी में नेपाली, मध्य पहाड़ी में कुमाऊंनी तथा गढ़वाली ओर पश्चिमी पहाड़ी में जौनसार से ले कर भद्रवाह तक की बोलियां मानी गई हैं।

चंबयाल़ी में संस्कृत तथा तद्भव शब्दों का बाहुल्य है जो गदयाल़ी में और भी ज्यादा है। गुणी, ध्यान, वचन, फल, कर्ता, भौम, जीव, केतू, सूर्य, चंद्र, द्वार जैसे तत्सम शब्दों के साथ त्वं से तू, अहं से हउं, कुत्र से कुते, अत्र से इते, इत्थं से ईह्यां, चुल्ली से चुल, दधि से दैंहीं जैसे शब्द इसके उदाहरण है।

गादी बोली भरमौर के अतिरिक्त छतराड़ी, बस्सु, लिल्ह, साहो, मेहला, कडेड, खजियार, भटियात में बोली जाती है। कांगड़ा तथा पालमपुर में धौलाधार की

तलहटी में जहां गद्दी लोग रहते हैं, यह बोली बोली जाती है।

यह बोली सीधी संस्कृत के निकट है। क्योंकि गद्दी लोग अलग-थलग रहे हैं, अतः इनकी बोली आज तक अपने मूल रूप में सुरक्षित रही है। अंण (लाना), अंस (अंश), कन्या (कन्या), कंदमूल (कंदमूल), अंबर (आकाश) जैसे संस्कृत के शब्द आज भी प्रयोग किए जाते हैं।

मुख्य क्षेत्र

गादी का मुख्य क्षेत्र भरमौर है। तहसील भरमौर, छतराड़ी, कूंर, पियूहर, भटियात तथा कांगड़ा (पालमपुर) का गद्दी वासी क्षेत्र इस बोली को बोलता है। गद्दी लोग जब गधेरण से जाते हैं तो सर्दियों में कांगड़ा में बसते हैं। यहां भी इन्होंने भरमौर की भांति गांव के गांव बसाए हैं। इन गांवों के नाम भी वही रखे हैं जो भरमौर में हैं। जैसे पालमपुर के पास 'राख' गांव है जहां बहुत-से गद्दी रहते हैं, बैजनाथ के ऊपर 'दयोल' गद्दियों का गांव है। अतः यहां गद्दियों ने पूरा भरमौर ही बसा दिया है। साथ ही आई गादी भाषा।

गादी बोली का दूसरा क्षेत्र बेलज, गूं, बकानी, मैहला का ऊपरी भाग कडेड है। तीसरा बस्सु और चौथा लिल्ह तथा साहो है। इन क्षेत्रों के गद्दी यहीं रहते हैं, कहीं प्रवास पर नहीं जाते। अधिकांश राठी लोग स्थायी तौर पर यहीं रहते हैं अतः बोली में थोड़ा अंतर आया है।

ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने 'श' ध्वनि को इस बोली में असाधारण बताया है, 'श' शब्द श, स, ख़ और ह भी ध्वनि देता है। चंबा में 'स', साहो तथा लिल्ह में इसे 'श' बोला जाता है। जैसे सांग (साग तथा शाग), सिंग (सिंग तथा शिंग), शंढ (संढ तथा शांढ)।

रेवड़ के साथ गद्दी

वेशभूषा एवं आभूषण

पुरुष वेशभूषा

गद्दी पुरुष की वेशभूषा पूर्णतया ऊनी कपड़े की बनी होती है। चाहे गर्मी हो, चाहे सर्दी, गद्दी लोग ऊनी कपड़ा नहीं उतारते। गर्मियों में कभी टांगें नंगी रख लेते हैं किंतु ऊपर ऊनी चोला लगा रहता है जिसके भीतर दो-तीन नवजात बकरी या भेड़ के बच्चे झांकते हैं।

पुरुष एक ऊनी चोला पहनते हैं जो सिला नहीं होता है या उसमें सिलाई नाम मात्र की होती है। गद्दी लोग सिलाई भी ऊनी धागे से करते हैं। चोले को कमर से काले डोरे में बांधा जाता है जिसे गात्री भी कहते हैं। यह डोरा काली ऊन का एक लंबा रस्सा होता है जो कमर के गिर्द लपेटा जाता है। रस्से के कई लपेटे मारे जाते हैं। जिससे काफी मोटा भाग कमर के ऊपर बन जाता है। ऐसा करने से कमर के ऊपर के हिस्से में चोला एक कोख का रूप धारण कर लेता है। जिसे 'खोख' कहते हैं। इस खोख में बैग की भांति आवश्यक वस्तुएं रखी जाती हैं जैसे रुपए-पैसे तंबाकू का खल्हडू या चमड़े का थैलू। बहुत बार भेड़-बकरी के नवजात शिशु भी इसमें रहते हैं। काले डोरे के साथ 'रूणका' तथा 'मंदुआ' लटका रहता है। रूणका लोहे का एक टुकड़ा होता है जिसे चकमक पत्थर के टकराकर आग पैदा की जाती है। मंदुआ

गद्दी युवती

चमड़े का बटुआ होता है जिसमें 'भुजलु' नाम की घास होती है जो चकमक पत्थर से लगी आग पकड़ती है।

डोरे में बांसुरी भी फंसाकर रखी जाती है ताकि कहीं अकेले में तान छेड़ी जा सके। डोरे के साथ ही 'नरेलू' या छोटा हुक्का भी लटका रहता है। जहां मन किया दम लगा लिया।

युवा गद्दी लंबे बाल रखते हैं। शीशा, जो गोल-सा होता है खोख में रखा जाता है। कंघी भी साथ होती है। वृद्ध या अधेड़ सिर पर लंबा ऊनी टोपा पहनते हैं। डोरा पीठ पर उठाया बोझ भी अपने ऊपर टिका लेता है।

टांगों में ऊनी या सूती सुथ्थण पहनी जाती है। गर्मी हुई तो टांगें भी नंगी रहती हैं। चोला-डोरा स्वयं ऊन से बनाया जाता है। स्वयं ही ऊनी धागे से सिया जाता है। कैंची स्थानीय लोहार बना देता है जिसे *झुमणी* कहते हैं। बर्फ के दिनों बकरी के बालों से बना 'जड़लू' पहना जाता है।

महिला वेशभूषा

महिलाएं एक घाघरानुमा 'लुआंचड़ी' पहनती हैं जो प्रायः प्रिंटेड होती है। इसका प्रिंट एक दूसरे से मिलता-जुलता होता है। ऊपर चोली पहनी जाती है जो नीचे के घाघरे में जुड़ी होती है। सिर पर लंबा-चौड़ा सूती दुपट्टा होता है। गले में कई तरह की मालाएं पहनी जाती हैं। डोडमाला, जौमाला, कीमती पत्थरों की माला, चांदी की ताबीज, सिर पर चांदी का चक, चौकड़ी, माथे पर चांदी का मानटिक्का। नाक में लौंग बलाक या बालू। कलाई में चांदी के मोटे-मोटे कंगण पैरों में पाजेब। पैरों में देसी तिल्लेदार जूते। इन जूतों को 'मोचड़ू' या 'मोछड़ू' कहा जाता है। कानों में बाली या कांटे पहने जाते हैं।

गद्दी महिलाएं

उत्सवों के समय वेशभूषा में विशेष सुधार किया जाता है। बहुत सज-धजकर पुरुष तथा स्त्रियां नृत्य करने के लिए निकलते हैं। पुरुष चोले के स्थान पर चोली पहनते हैं। यह चोली बढ़िया सफेद ऊन के तैयार की जाती है। चोले से यह लंबी होती है डोरा भी तिल्लेदार होता है। सिर पर सफेद साफा या लंबा ऊनी टोपा पहना जाता है जिस पर कलगी लगाई जाती है। गले में माला और कलाई में कंगण पहने जाते हैं। कानों में सोने की नंती पहनी जाती है। स्त्रियां भी ऐसे समय अच्छे कपड़े की लुआंचड़ी और तिल्लेदार दुपट्टा पहनती हैं।

चंबा शहर में पहले लोग धोती या पायजामा, कमीज या वास्केट और सिर पर साफा पहनते थे। महिलाएं चूड़ीदार पाजामी, कमीज़, पसवाज़ तथा सिर पर दुपट्टा लेती थीं। चूड़ीदार पायजामा, लंबा कुरता पहने गूजर महिलाएं भी दिख जाती थीं। पहरावे में कढ़ाई का विशेष स्थान था।

चंबा भरमौर में चांदी के गहनों की बहुतायत है। ज्यादातर गहने चांदी के ही बनाए जाते है अलबत्ता बदलते समय के साथ सोना तथा अन्य धातुओं का चलन भी हुआ है। माथे का मानटिक्का तथा नाक का लौंग सोने का होता है। कांगड़ा की भांति नाक में सोने की नथ भी पहनी जाती है जिसका आकार बड़ा और डिजाइन युक्त होता है।

महिलाएं सिर में चांदी का आभूषण लगाती है जिसे या चक कहा जाता है। यह छह से दस तोले का बनाया जाता है। चांदी का ही एक गहना क्लिप कानों के पास बालों में लगाया जाता है जो दो तोले का होता है। झुमके सोने या चांदी दोनों के हो सकते हैं। चंद्रहार गले में पहनने वाला आभूषण है जो चांदी का होता

सिर का आभूषण

नाक का आभूषण : नथ

है। इसकी माला के नीचे शीशे के फ्रेम में राधाकृष्ण या किसी देवी-देवता का चित्र लगा रहता है। डोडमाला महिलाएं गले में पहनती हैं जिसमें डोडे अथात् रीठे के आकार के मनके लगाए जाते हैं। दस से पंद्रह तोले चांदी की पाजेब पांवों में पहनी जाती है। पैरों के लिए घुंघरू लगभग छह तोले चांदी के बनते हैं।

मानटिक्का लगभग पांच छह तोले का सोने का आभूषण है जो माथे पर सजाया जाता है। सोने की तिल्ली नाक में पहनी जाती है।

कुछ समय पूर्व तक महिलाएं (विशेषकर गद्दी महिलाएं) 'कपूरा दी माला' भी पहनती थीं। यह माला पीले रंग के बड़े बड़े मोतियों की होती थी जिसमें में सुच्चे मोती और भिट्टे यानी झूठे मोती हुआ करते थे। ऐसी मालाएं लाहौली महिलाएं भी पहनती थीं। चांदी की एक 'चिड़ी' भी पहनी जाती जिसमें छोटा शीशा लगा होता था।

पुरुष पहले कान में सोने के कुंडल पहना करते थे। गले में सोने की चेन व हाथों में अंगूठियां अब भी पहनी जाती हैं। चुराही महिला के आभूषण थोड़े भिन्न हैं।

चुराही महिला

गुज्जर

चंबा के ऊंचाई वाले जनजातीय तथा अन्य क्षेत्रों में गुज्जर बहुतायत में हैं। घने जंगल होने के कारण गुज्जरों को अपनी भैंसों के साथ इस ओर आना उपयोगी रहता है। ऊंचे शिखरों तथा जोतों की ओर ये लोग अपनी भैंसें ले जाते हैं और इनके लिए जंगल भी नियत किए हुए हैं। अधिकांश गुज्जर गर्मियों तथा बरसात में आते हैं और सर्दियां पड़ने से पहले चले जाते हैं। ये लोग प्रतिवर्ष मैदानों से आते हैं। कुछ गुज्जर यहां स्थायी रूप से बस भी गए हैं।

चंबा शहर में गुज्जर घूमते हुए नज़र आ जाते हैं। बाज़ार में गुज्जरी परिधान सीने वाले दर्जी भी बैठते हैं।

कनिंघम ने कहा है कि गुज्जर लोग अपने केंद्रीय स्थल गुजरात के अतिरिक्त उत्तरी पश्चिमी भारत में सिंधु नदी से गंगा तक पाए जाते हैं। जगाधरी, जम्मू, सहारनपुर आदि स्थानों में भी गुज्जर रहते हैं। ग्वालियर में एक गुज्जरगढ़ भी है। गुजरात में इनकी जनसंख्या अधिक है। दिल्ली के दक्षिण में रेवाड़ी के राजा गुज्जर हैं। कनिंघम ने उस समय गुजरात में कुल जनसंख्या का साढ़े तेरह प्रतिशत गुज्जर बताए हैं। जम्मू तथा होशियारपुर ज़िलों को छोड़ शेष सभी गुज्जर मुस्लिम हैं।

गुज्जर लोग जाटों की तरह लंबे और हृष्ट-पुष्ट होते हैं। इनका सामाजिक स्तर भी जाट का है। जाट, अहीर, गुज्जरों का नाम साथ लिया जाता है।

रावी नदी

ये लोग खेती नहीं करते। गद्दी यदि भेड़-बकरियां पालते हैं तो गुज्जर भैंसें रखते हैं। दूध, घी, बेचकर ये अपना गुजारा करते हैं। गुज्जर लोग भैंसों के साथ रहते हैं तो महिलाएं दूध-घी बेचती हैं।

यूं तो हिमाचल के लगभग हर भाग में गुज्जर रहते हैं। मंडी, ज्वालामुखी, नादौन, कांगड़ा, में ये लोग रहते हैं। भैंसें लिए हुए ये चंबा के अतिरिक्त शिमला के ऊपरी भागों में भी जाते हैं जहां जंगल हैं। चंबा के जंगलों की बहुतायत के कारण ये लोग अधिक हैं।

गुज्जर का मूल गूर्जर राज्य था। मथुरा के गूर्जरों से भी इनका मूल जोड़ा जाता है। गुज्जरों की चौरासी शाखाएं बताई जाती हैं।

चंबा के क्षेत्र में दो तरह के गूज्जर हैं। एक तो वे जिनके वहां घर हैं, खेत और ज़मीन है। वे आसपास भैंसें चराकर भी गुजारा करते हैं। कुछ ऐसे हैं जिनके घर जम्मू, सहारनपुर, पठानकोट आदि मैदानी इलाकों में हैं। वे गर्मियों या बरसात तक यहां भैंसें चराते हैं। सर्दियों में वापस लौट जाते हैं। ऐसे गुज्जर मुस्लिम हैं।

शिव पूजा का विशिष्ट अनुष्ठान : नुआला़

'नुआला़' गद्दी जनजाति का एक महत्त्वपूर्ण उत्सव है। इसे गुसैंतण, गुसैंइ या दस्यूंद भी कहा जाता है। गुसैंतण आदि नुआले़ से छोटे स्तर के उत्सव हैं। ये नुआले़ के ही संक्षिप्त रूप हैं।

नुआले़ का सही अर्थ ज्ञात नहीं है। 'नव-आलय' या नया घर बनने के उपलक्ष्य में किया जाने वाला उत्सव नुआला़ कहलाता है। इस उत्सव में नौ व्यक्ति-पुरोहित, जजमान, जोगी, कोटवाल, बटवाल, चार बंदे (गायक) होते हैं, अतः नुआला़ कहलाता है। आम बोलचाल में भी कहा जाता है 'नौ मन्ह नुआला़' अर्थात् नौ मनुष्यों से नुआला़। इस उत्सव में ऊन वाला पशुबलि किया जाता है। बकरे की बलि न दी जाकर ऊन वाले मेंढे की बलि दी जाती है। ऊनी पशु को 'उनाला़ं' कहते हैं। मेंढे का सिर पूजन में रखा जाता है। ऊन की माला बनाई जाती है और पूजन सामग्री में ऊन प्रयोग में लाई जाती है। अतः उनाला़ं से भी नुआला़ की व्युत्पत्ति मानी जाती है।

उत्सव का आयोजन

नुआले़ का आयोजन नवगृह प्रवेश, पुत्र उत्पत्ति, नई फसल आने पर, किसी मनोकामना की पूर्ति पर, किसी शुभ कार्य के समय पर किया जाता है। कोई सुक्खण करने या कामना करने तथा उसके लिए नुआला़ करने के संकल्प के बाद नुआला़ किया जाता है।

यह आयोजन घर के भीतर, मंदिर में या किसी तीर्थ स्थल पर भी किया जाता है। इसके आयोजन के लिए शुभ घड़ी का मुहूर्त निकाला जाता है। शिवरात्रि इसके लिए पवित्र दिन है। श्रावण मास उपयुक्त महीना है। छोटे होते दिनों (21 जून से 22 दिसंबर) मलमास (जब शुक्र तारा डूब जाता है), काले महीने (भादों, कार्तिक, चैत्र) तथा पंजकों (अशुभ नक्षत्र के पांच दिन) में नुआला़ वर्जित है।। जिस घर में किसी की मृत्यु हुई हो, वहां भी नुआला़ नहीं किया जाता।

उत्सव में आवश्यकता केवल नौ ही व्यक्ति की ही होती हैं। अतः इसे संक्षिप्त से संक्षिप्त तथा विस्तृत से विस्तृत किया जा सकता है। इसे साधारण से साधारण परिवार भी करवा सकते हैं। बलि के लिए भेड़ा तो सबके पास होता ही है। नुआले़ का आयोजन बड़े से बड़ा भी हो सकता है।

नगारा : एक प्रमुख वाद्य

विधि-विधान

पर्वत और शिव का अटूट संबंध है। पर्वतीय संस्कृति शैव संस्कृति रही है। हिमाचल में सत्रहवीं शताब्दी के आसपास वैष्णव धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। राज्याश्रय से पनपा वैष्णव धर्म इतनी तेज़ी से फैला कि शैव उत्सव गौण हो गए। कुल्लू, मंडी, सिरमौर तथा चंबा में राजाओं के वैष्णव होने से शैव पृष्ठभूमि में चले गए किंतु इन्हें पूर्णतया पीछे नहीं किया जा सका। चंबा में यद्यपि लक्ष्मीनारायण मंदिर परिसर बना, राजा वैष्णव हुआ तथापि योगी या जोगी जनमानस में छाए रहे।

नुआला शिव पूजन का पर्व है जिसमें शैव तथा नाथ संप्रदाय की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। नाथ पंथ के कानफटे योगी कुछ समय बाद 'जोगी' कहलाए। नुआले का दान योगी या जोगियों को दिया जाता था। जोगी न होने की स्थिति में भानजा, भतीजा, पुरोहित यह दान लेता है।

नुआले के आयोजन में जोगी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। सबसे पहले जोगी अपनी परंपरागत वेशभूषा में आ पहुंचता है। कान में मुद्रा, गले में मेखला, सिर पर भगवा पगड़ी, धोती पहने जोगी पहुंच जाता है। जोगी के पास दवात्र या दपात्र, कंसी, काहन-पौंहल, नांदी, सांगल, धूपमाला, धूपपात्र आदि सामग्री होती है। उसके पहुंचते ही मंडप बनाने का कार्य प्रारंभ हो जाता है।

नुआले के दिन सभी नौ व्यक्तियों-आयोजक या जजमान, पुरोहित, जोगी, कोरवाल, बटवाल तथा चार बंदे (गायक) को व्रत रखना होता है। जोगी, पुरोहित तथा गायकों के आते ही पैर धुलवाए जाते हैं। उन्हें उचित स्थान पर बिठाकर दान-दक्षिणा दी जाती है। जोगी नांद बजाता है, शिव की जय-जयकार करता है और मंडप बनाने के लिए सामग्री लेता जाता है।

मंडप को 'मंदला' कहते हैं। पुरोहित आटे की रेखाएं बनाकर मंडप बनाता है। मंडप में 32, 36 या 84 खाने या 'कोठे' बनाए जाते हैं। लगभग एक वर्ग गज

भूमि को पहले से गोबर से लीप-पोतकर तैयार रखा जाता है। मंडप के बीचोंबीच कैलास बनाया जाता है। बीच में छत के ऊपर एक ऊनी डोरी लटकाई जाती है जो पुष्पमाला लटकाने के लिए होती है। आटे के कैलास, चार वेद बनाए जाते हैं। कैलास के आगे शिव-पार्वती की प्रतिमा और मेवे आदि रखे जाते हैं। कोष्ठों में चावल, माश, नमक, बब्बरू रखे जाते हैं। छत से फूलमालाएं लटकाई जाती हैं।

मंडप के दाईं ओर दस्यूंद का पात्र रखा जाता है। दस्युंद में दस माणी, दस अंजली या दस मुट्ठी अन्न दान के लिए रखा जा सकता है। माणी लकड़ी का एक पात्र होता है जिसमें लगभग दो किलो अनाज आता है। जजमान अपनी श्रद्धा तथा शक्ति के अनुसार दस्युंद में अन्न डालता है। दस्युंद के साथ दीपक तथा दुपात्रा रखते हैं। धूप पात्र में धूप जलाया जाता है। दस्युंद तथा दूसरे पात्रों का दान सिर को ढांपकर, दाहिना घुटना भूमि में लगाकर, मुंह में हरा तिनका रखकर किया जाता है।

मंडप बनाते हुए महिलाएं मंगलगान गाती हैं। वाद्य बजाए जाते हैं। मंडप बनने पर पुरोहित इसे जीवन दान देता है।

मंडप की प्रथम आरती के बाद मेंढे की बलि दी जाती है। मेंढे का सिर और दाहिना बाहू या बाजू मंडप पर चढ़ाया जाता है। घर के चारों ओर दूध और लस्सी की धारा गिराई जाती है बब्बरू फेंके जाते हैं। जोगी के लिए अमल पाणी लिया जाता है।

जोगी कटवाल और बटवाल को नियुक्त करता है। ये दोनों कामगार जोगी का रात भर काम-काज में हाथ बंटाते हैं।

चेला परंपरागत वेशभूषा में बैठता है। चोला-डोरा टोपी पहले चेला कमर में छड़ी और सांप की मूर्तियां रखता है। सांगल तथा कटार भी रखे रखता है। कुछ चेले पौंहल बजाते हैं।

जजमान हाथ जोड़े चेले के आगे खड़ा हो आयोजन के लिए स्वीकृति मांगता है। चेले में जब शिव की शक्ति भीतर संचारित होने लगती है तो जोगी जयकारा बुलाने लगता है। जोगी मणिमहेश, कैलास, भरमौर, केलांग वजीर, शेष नाग आदि की जै जनता से बुलवाता है।

इस जय-जयकार से चेला उत्तेजित हो उठता है और कमर तक नंगा हो जाता है। उसकी जटाएं बिखर जाती हैं। कटार हाथ में लिए वह कमर, बाजू और जिह्वा पर चलाता है जिसका उस पर कोई असर नहीं होता। कुछ चेले नंगे नहीं होते और न ही कटार के साथ खेलते हैं। वे सांगल लेकर अपने को मारते हैं। कई जगह चेला आवेश में आकर भविष्यवाणियां भी करता है लोगों का जादू-टोने से उपचार करता है।

चेले में शक्ति का प्रवेश होने पर आवेश में आना 'घ्रिंगणा' कहलाता है। घ्रिंगणे पर चेले कटार, सांगल से खेलते हैं। बिच्छू बूटी खाते हैं। बलि पशु का खून पीते हैं, शराब पीते हैं।

चेलों के आवेश का दृश्य समाप्त होने पर भोग लगता है, आरती गाई जाती है। लोगों को भोज खिलाया जाता है। यह सब आधी रात तक पूरा हो पाता है।

इस सारे आयोजन में चार बंदों या गायकों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। चार गायक दो-दो की टोली में गाते हैं। पहले गाने वाले 'मूरही' कहलाते हैं जिनके पास ढोलक और कांसी होती है। दूसरे दो वाक्य दोहराते हैं। इनके पास नगाड़ा और थाल होता है। इन्हें 'पिच्छयाड़त' कहते हैं। ये लोग 'ऐंचली' गाते हैं जो शिव विवाह है। चेलों के नाच के बाद जब पुनः ऐंचली गाई जाती है तो उसमें चंदरौली नाचती है। प्रातः होने पर भ्यागड़ा गाया जाता है। आरती के बाद जोगी माला को आधी लपेटकर कैलास की जगह कुंभ रखकर वापस चला जाता है। यह आयोजन पूरी रात चलता है।

नुआले़ के गीत में मनुष्य के साथ ब्रह्मा के वार्तालाप का उल्लेख है।

ब्रह्मा ने पूछा ''मानव! तू अब क्या खाएगा, क्या कमाएगा और अपने जीवनदाता को क्या अर्पित करेगा।'' इस पर मानव ने उत्तर दिया - ''मैं बहुत कमाऊंगा और थोड़ा खाऊंगा। कुछ आपको अर्पण भी करूंगा।'' साढ़े तीन हाथ के मानव ने निचले प्रदेश का जोगी सिद्ध बुलाया, गज भर का मंडप बनाया। उसमें आटा, चावल, माश, बब्बरू आदि कच्चा पक्का अन्न भरा, गगन में फूल माला लटकाई। अंत में पशु बलि दी और प्रार्थना की कि हे स्वामी! मेरा पितृ ऋण स्वीकारो।

'ऐंचली' एक लंबा गीत या गाथा है। इसमें शिव विवाह, रामायण, महाभारत, गाए जाते हैं। कुछ धार्मिक आख्यान जैसे हरिश्चंद्र, गोपीचंद, मोरध्वज, नल- दमयंती के जीवन-चरित्र भी गाकर सुनाए जाते हैं।

शिव विवाह नुआले़ के समय केवल रात को गाया जाता है। भयागड़ा प्रातः काल का गायन है। रामायण रात या दिन दोनों समय गाई जा सकती है। महाभारत बारह बजे के बाद घर के बाहर या आंगन में गाई जाती है। नुआले़ के अवसर पर महिलाएं घुरेई गाती हैं।

वाद्य

नाद

यह पशुओं के सींग से बना वाद्य है जिसे जोगी शिव के आह्वान के लिए बजाता है। जोगी या साधु सींग के इस वाद्य को साथ लिए चलते हैं। जिन जोगियों

के पास नाद न हो वे अपने गले में डमरू लटकाए रहते हैं। इस डमरू को नादी कहते हैं। नाद ब्रह्मा या शब्द का स्वरूप भी है।

दुबात्र

दुबात्र या दुपात्र, जैसे कि नाम से स्पष्ट है, दो पात्रों वाला वाद्य है। इसे कींगरी भी कहते हैं जो वीणा का एक प्रकार है। एक लकड़ी पर तारें कसकर दो घिये या लौकी के खोल लगाए जाते हैं। लोककथा है कि पार्वती ने अपनी सौतन गंगा को शिव की जटा से बाहर निकालने के लिए शिव को नृत्य करने पर आकर्षित करने हेतु यह वाद्य बनाया। पार्वती ने अपनी बांह को काटकर लकड़ी बनाई। बालों से तारें बनाईं। सफेद कौड़ी के जगह दांत लगाए। स्तन काटकर पात्र बनाए।

काहल

तांबे या पीतल का पांच-छह फुट लंबा शहनाई के आकार यह वाद्य काहल कहलाता है। इस वाद्य का प्रयोग युद्ध के समय किया जाता था। अब यह जातर तथा अन्य धार्मिक उत्सवों में बजाया जाता है।

पौंहल

यह वाद्य डमरू के आकार का होता है। यह ढोलक की भांति दोनों ओर से चमड़े से मढ़ा जाता है किंतु बीच का भाग डमरू की भांति पतला होता है। इसे तांबे या पीतल से बनाया जाता है। जोगी इसे शिव पूजन के समय बजाते हैं।

नगाड़ा

नगाड़ा तांबे या पीतल का होता है। इस क्षेत्र में कई जगह नगाड़ा मिट्टी से भी बनाया जाता है। नगाड़े दो होते हैं। जिनमें एक को 'ढग्गा' और दूसरे को 'टंणकणु' कहा जाता है। एक मोटा स्वर और दूसरा पतला स्वर निकालता है। इसे बजाने वाले को नगारची, ढाढी, ढौंसी कहते हैं। बजाने वाली छड़ियों को चोब कहते हैं।

घड़ा, थाल

यह वाद्य मिट्टी का घड़ा और कांसे का थाल है जिसे संयुक्त रूप में बजाया जाता है। इसे एंचली गाते हुए पिछवाड़ गायक बजाते हैं। घड़ा थाली एक महत्त्वपूर्ण लोक वाद्य है।

कंसी

छोटे आकार की कांसे की मंजीरा या झांझ को कंसी कहते हैं। इसका प्रयोग गाथा गायन के समय किया जाता है।

शहनाई

शहनाई आम शहनाई की तरह होती है किंतु यहां इसका आकार छोटा होता है। चंबा की ओर शहनाई अपेक्षाकृत मोटा स्वर निकालती है।

नुआले़ के अवसर पर गाथा गायन

शिव पूजन पर एक लंबी गाथा गाई जाती है जिसमें शिव विवाह का वर्णन किया जाता है। इस गाथा का आरंभ इस प्रकार होता है :

न थीए धरणी न थीए गासा, तां थीआ न्हेर गुवाऽऽरा न।
न थीए चन्द्र न थीए सूरज, तां थीआ न्हेर गुवाऽऽरा न।
न थीए तारा न थीए ब्याहणु, तां थीआ न्हेर गुवाऽऽरा न।
न थीए पौन न थीए पाणी, तां थीआ न्हेर गुवाऽऽरा न।
दैहणे अंगे रि सामी मैल कढ़ाइ ऐ, जिसा केरी धरणी बणाऽऽईन।
बौएं अंगे रि सामी मैल कढ़ाई ऐ, जिसा केरी मनसो बणाऽऽई न।
बरमा पुछदा बिष्णुए तांह ऐ, कुणी लैणे धरणी रे भाऽऽरे न ?
बिष्णु बोलदा बरमे ताहं ऐ जिनी लैणे धरणी रे भाऽऽरे न।
नाज गुरु भछणा मनसो ब्याहणी तिनी लैणे धरणी रे भाऽऽरे न।
पहले धरती कि पहले गास ? पहले धरती पिचे होए गासा।
पहले चन्द्र कि पहले सूरज ? पहले चन्द्र पिचे होए सूरजा।
पहले तारा कि पहले ब्याहणु ? पहले तारा पिचे होए ब्याहणु।
पहले पौन कि पहले पाणी ? पहल पौन पिचे होए पाणी।
पहले गुरु कि पहले चेला ? पहले गुरु पिचे होए चेला।
संझ-संझ होई काला बेला ए हां, डंगरा ढपाणे रा बेला ए हां।
संझ-संझ होई काला बेला ए हां, बच्छू जो पिआणे रा बेला ए हां।
संझ-संझ होई काला बेला ए हां, गौआं दुहाणे रा बेला ऐ हां।
संझ-संझ होई काला बेला ए हां, धूप-धूखाणे रा बेला ए हां।
परागबड़ी ता पर आया हो, धन साहेब मेरा।
धौलू बैला ता पर आया हो, धन साहेब मेरा।
बज्रसिला ता पर आया हो, धन साहेब मेरा।
बज्रबटुए ता पर आया हो, धन साहेब मेरा।
सेसनागा ता पर आया हो, धन साहेब मेरा।
सेसनागा लिपटाए हो, धन साहेब मेरा।

शैव वैष्णव संगम

चंबा नगर के मध्य में लक्ष्मीनारायण मंदिर, हरिराय मंदिर के होने के कारण और राजपरिवार के वैष्णव भक्त होने के बाबजूद ब्रह्मपुर या भरमौर में शैव परंपरा बराबर विद्यमान रही। कहा जाता है चंबा में राजधानी बनने पर मंदिरों का निर्माण योगी चरपटनाथ के परामर्श के अनुसार हुआ।

ऐसा संगम मंडी तथा कुल्लू में भी देखने को मिलता है। कुल्लू में भी पहले नाथों का प्रभुत्व था। कुल्लू में अवध से श्रीरघुनाथजी के आगमन से शैव वैष्णव का संगम हुआ और यहां दशहरा मनाया जाने लगा। इसी प्रकार मंडी में भूतनाथ मंदिर के साथ माधोराय के प्रभुत्व से शिवरात्रि का आरंभ माधोराय की शोभायात्रा से होता है। ऐसा ही चंबा में भी हुआ।

आज भी मणिमहेश यात्रा का प्रारंभ चंबा से ही होता है। मणिमहेश कैलास शिव पूजा का सशक्त उदाहरण है। मणिमहेश का शिखर एक प्राकृतिक लिंग के रूप में स्थित है। मणिमहेश यात्रा चंबा के साथ-साथ हिमाचल तथा जम्मू के क्षेत्रों में उतनी ही पवित्र मानी जाती है।

चंबा-भरमौर में चेले (देवता के प्रतिनिधि जिन्हें कुल्लू में गूर कहा जाता है) शिव आराधना या आह्वान के लिए डमरू का प्रयोग करते हैं। इस डमरूनुमा वाद्य को, जो पीतल या तांबे का बना होता है 'पौंहल' कहते हैं।

चेले अपने साथ चांदी अथवा लोहे की छड़ी तथा सांप रखते हैं। ये तांत्रिक प्रतीक माने जाते हैं और प्रायः छिपाकर रखे जाते हैं। सांप नाग का प्रतीक है। छड़ी त्रिशूल का प्रतीक है। भरमौर तथा पांगी की ओर सभी मंदिरों में चाहे वे देवी के हों, नाग के हों, त्रिशूल गड़े हुए देखे जा सकते हैं। छड़ी, छड़ी यात्रा वाली साधुओं की छड़ी भी हो सकती है। जोगी लोग सींग का वाद्य 'नाद' उठाए रखने के साथ गले में डमरू डाले घूमते हैं। इस डमरू को 'नादी' कहते हैं।

मणिमहेश में प्रातःकालीन सूर्य 'मणि' के समान चमकता है। मणिमहेश या मन महेश में मन स्थिर रहता है आदि अटकलें इस शिखर के नामकरण के पीछे लगाई जाती हैं। कई प्रकार की कथाएं भी इस विषय में प्रचलित हैं। मान्यता है कि रावण अपनी पूजा के लिए इस शिखर को स्वर्ग से लाया। शिखर स्वर्ग से लाने की यह शर्त थी कि इसे कहीं भी रास्ते में रखा न जाए। रावण को रास्ते में लघुशंका आई।

शंका निवारण के लिए उसने शिखर हनुमान के पास थमा दिया। जब रावण काफी समय तक नहीं आया और हनुमान की बांहें थक गईं तो उन्होंने आवाज़ लगाई कि रावण लिंग को संभालो अन्यथा वे इसे भूमि पर धर देंगे। रावण शीघ्र नहीं आ पाया और हनुमान ने शिखर यहीं रख दिया। अब रावण प्रतिदिन यहां पुष्पक विमान पर बैठकर पूजा के लिए आने लगा।

मणिमहेश तो महादेव के अनुयायियों के लिए अभीष्ट बना ही, रास्ते के सभी स्थल भी पूजनीय हुए।

त्रिलोचन महादेव चंबा भरमौर सड़क पर रावी नदी के दाएं किनारे स्थित हैं। महादेव मंदिर के विषय में त्रिलोचन नाम के एक गद्दी की कथा है। यहां भी मणिमहेश की भांति पर्व मनाए जाते हैं।

मणिमहेश यात्रा में हड़सर, धणछोह, गौरी कुंड, शिवकरोत्री, भरमौर शिव के महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। भरमौर को चौरासी भी कहा जाता हैं जो चौरासी सिद्धों से संबंधित है।

शिवालिक पर्वत श्रेणियों में हाथीधार पर कुंजर महादेव का मंदिर है। इस मंदिर के साथ शिव द्वारा पार्वती की रक्षा में पहरे पर खड़े गणेश के वध तथा उन्हें हाथी का सिर लगाने की कथा जुड़ी है। यह मंदिर द्रम्मण-चुआड़ी मार्ग पर टूंडी गांव से लगभग दस मील दूर पहाड़ी पर स्थित है।

चंबा-भांदल सड़क पर पुखरी से तीन चार किलोमीटर 'अणैला महादेव' का मंदिर है। यहां भी मणिमहेश यात्रा के दिनों 'पर्वी' मनाई जाती है। इस मंदिर की स्थापना के बारे में एक कथा चंद्रशेखर मंदिर की भांति शिव द्वारा स्वयं लिंग छोड़े जाने की है। अन्य कथा के अनुसार सिद्धों का एक दल भरमौर से कश्मीर जाता हुआ वहां ठहरा। वहां पानी नहीं था अतः उन्होंने योग बल से पीने तथा स्नान के लिए वहां मणिमहेश का पानी निकाल दिया। इस जल में मणिमहेश की भांति कृष्ण जन्माष्टमी तथा राधा अष्टमी को स्नान की परंपरा डाली। यहां अनेक चमत्कार भी होने लगे जैसे बांझ को पुत्र प्राप्ति, असाध्य रोगों का उपचार, प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा आदि आदि। एक बार चंबा के राजा श्यामसिंह को मंदिर के चेले ने बैशाख में बर्फ गिरा कर चमत्कार दिखाया।

शैव परंपरा में नाथ तथा सिद्धों का प्रभाव इस ओर अधिक रहा। भले ही कुल्लू या मंडी की भांति बाद में वैष्णव प्रभावी हुए।

चौरासी सिद्धों की याद में भरमौर में समाधियां हैं। चरपटनाथ गुरु गोरखनाथ के शिष्य थे। वे ब्रह्मपुर आए जहां राजा साहिलवर्मन की पुत्री चंपावती

उनकी शिष्य बनी। चरपटनाथ चंबा वापस आए। कहा जाता है चरपटनाथ वज्रयानी शाखा के थे। वज्रयानी से वे रससिद्ध संप्रदाय में आए और फिर नाथ हुए। चरपटनाथ का राजा के वैष्णव होने पर यहां सम्मान था। भरमौर को शिवपुरी कहा जाता है, ऐसा शिलालेखों में उल्लेख है।

नाथ संप्रदाय में चंबा में कुछ और बाबा भी हुए। इनमें मट्टी वाले स्वामी जूंढ, नागा बाबा जयकृष्णगिरि (जिसकी भरमौर में समाधि है) जमाल शाह, शाहमद्दार, माई बाग पीर, स्वामी ध्यानस्वरूप (ततवाणी), स्वामी हरिगिरि (ककीरा) उल्लेखनीय हैं।

आज भी मणिमहेश यात्रा साधुओं द्वारा ही आरंभ होती है। इसे 'छड़ी यात्रा' कहा जाता है। मणिमहेश यात्रा में दूर-दूर से कई साधु आते हैं।

चंद्रशेखर मंदिर और पत्थर पर लिखी प्रेम कविता

लोक कवियों का नाम न होते हुए भी बड़ा नाम होता है। बहुत बार लोक कवि ने ऐसी बात कही जो लिखित रूप में सामने न आते हुए भी लोगों ने गा-गाकर स्मरण रखी है। आज किसी अकादमी या उससे भी बड़े पुरस्कार से पुरस्कृत कवि की सुंदर ढंग से छपी कविता कोई नहीं गुनगुनाता (छात्रों को परीक्षा के लिए अवश्य पढ़नी पड़ती है) किंतु उन अनाम कवियों ने जो कालजयी रचनाएं रचीं, वह आज भी गुनगुनाई जाती हैं।

ऐसे ही लोकगीत हैं चंबा में, जो गायकी के लिए प्रसिद्ध हैं ही, अपने रचना कौशल में भी अद्वितीय है। एक गीत है 'छिम्बी' जो एक महिला की सुंदरता का बखान इस तरह करता है कि बड़े कवियों को मात देता है। उसकी दंत पंक्ति, उसके होंठ काव्यमयी भाषा में अलंकृत किए गए हैं। आज के प्रचलित गीत 'राजा तेरेयां गोरखयां ने' के पुरातन स्वरूप की पंक्तियों में भी ऐसा अनुपम गान है। खिले हुए खटनालू (फूल) की तरह दांत, सूरज की तरह चमकती आंखें, पान की तरह होंठ लोकगीत में वर्णित हैं।

इसी तरह का सौंदर्य वर्णन सात्यकि ने शिला पर अपनी प्रिया पत्नी सोमप्रभा के लिए लिखवाया, यह जानकारी साहो में जाकर मिली। इस शिलालेख में संस्कृत कवि ने अपनी छंद शक्ति के माध्यम से जो नख-शिख वर्णन किया है, वह अद्‌भुत है। कवि का नाम हम नहीं जानते। वह अनाम कवि सोमप्रभा को आज भी हमारे सामने साक्षात् प्रस्तुत कर देता है। राजा राणा मर मिटे। सोमप्रभा भी नहीं रही। उसका स्मरण आज प्रस्तर शिला पर मूर्तिमान हो उठता है।

चंबा शहर से पहले पुल पार कर ऊपर की ओर जाने वाली सड़क पर लगभग बारह किलोमीटर दूर साहो आता है। साहो परगने का साहो गांव चंद्रशेखर मंदिर के कारण प्रसिद्ध है और अपने परंपरागत लोकगीत तथा नृत्य के कारण। साहो का एक सांस्कृतिक दल प्रदेश के कई महत्त्वपूर्ण मेलों व कार्यक्रमों में आता रहा है। गांव के ऊपर एक विश्रामगृह है वन विभाग का। गांव नीचे है।

विश्रामगृह में स्थानीय लोकगायकों से भेंट हुई, जिन्होंने चंबा के कई गीत सुनाए। चंबा का मधुर संगीत आधुनिकता की चपेट से बचा हुआ है। जबकि कुछ पुराने गीत समय की रफतार को पकड़ने की कोशिश में अपना वास्तविक स्वरूप खो बैठे। ऐसा ही एक बहुत प्रचलित गीत है 'अलबेलुआ हो'। समय के साथ इस गीत की धुन बहुत

बदली है। यहां इस गाने की असली धुन सुनने को मिली जो लंबी लय के उतार-चढ़ाव की विशेषता लिए हुए थी। इस धुन में आज की तेज़ी न होकर धीमी गरिमा थी। लंबी लय और एकदम से उतार-चढ़ाव चंबा के गानों की विशेषता है।

गांव में वह गायिका थी जिसे हम मिलना चाहते थे। रेलो देवी एक मशहूर गायिका रही चंबा की। असली गायन सुनना हो तो उसी से सुनिए, किसी ने बताया था।

उस दिन वह बीमार थी। बुखार से पीड़ित होने पर भी उसने हमें कुछ मनभावन गीत सुनाए जिनमें न आज जैसी तेज़ी थी, न बनावटी लटका। एक गीत गाकर वह बिस्तर में औंधी लेट जाती। गीतों में कुछ लोक से संबंधित थे, कुछ ऐतिहासिक।

एक गीत राजा श्रीसिंह (1844) के बीमार होने के विषय में था 'सीरिसिंघ कसरी सुणादे हो ।' श्रीसिंह बीमार सुना जाता है। उसे ठीक करने के लिए वैद्य बुलाए जाते हैं, आदि-आदि।

'हमें राजा लोग गाने के लिए बुलाते थे,' उसने बताया। 'कभी कुछ मिल भी जाता था। जब राजा यहां आते मंदिर में, तब भी हम लोग गाने के लिए जाते।'

गांव के एक ओर ही है चंद्रशेखर मंदिर। बाहर से साधारण स्लेट की छत वाला घर सा। भीतर पुरातन शिवलिंग। शिवलिंग एक बड़ी शिला के भीतर है। मंदिर का मुख्यद्वार आकर्षक है। स्तंभों में घटकलश तथा फूल अंकित हैं। दोनों द्वार स्तंभों में सुंदर नक्काशी की हुई है। स्तंभ के निचले भाग से शिव की खड़ी मुद्रा में 2'3'' प्रतिमा है। दाईं ओर मुद्रा क्रुद्ध रूप में तो बाईं ओर शांत। दाईं प्रतिमा के तीन मुख छह भुजाएं हैं।

मंदिर प्रांगण जैसे दब-सा गया है। दूसरी ओर नंदी हैं लगभग 6'4''। लोग कहते हैं यहां बाढ़ आई जिससे प्रांगण दब गया, मंदिर को भी क्षति पहुंची। मंदिर का बरामदा और छत सन् 1900 में दुबारा बनाई गई।

लोगों का विश्वास है कि मंदिर साहिल वर्मन द्वारा बनाया गया। ऐसा एक स्थान पर वोगल ने भी लिखा है। यह बात शिलालेख के होने से सही नहीं लगती। यद्यपि लिपि के आधार पर शिलालेख को दसवीं शताब्दी का माना गया है जो साहिल वर्मन के किसी उत्तराधिकारी के समय था।

साहो के ठीक पार सराहन में छोटे से ग्राम मंदिर का महत्त्वपूर्ण शिलालेख इस समय भूरिसिंह संग्रहालय में है।

शिलालेख से स्पष्ट है कि चंद्रशेखर मंदिर का निर्माण सात्यकि द्वारा किया

गया जिसकी रानी का नाम सोमप्रभा था। सात्यकि चंबा के राजाओं की वंशावली में नहीं आता। सात्यकि स्थानीय राणा था। सात्यकि द्वारा स्थापित शिव मंदिर सराहन स्थित ग्राम मंदिर नहीं बल्कि साहो स्थित चंद्रशेखर मंदिर माना गया है।

मई, 1908 में भूरिसिंह संग्रहालय चंबा में सुरक्षित इस शिलालेख में दोनों ओर लेख हैं। 21'' चौड़ी $6^{1/4}$" ऊंची शिला पर दोनों ओर बाईस पंक्तियां हैं। जिनमें 21'' लंबी पंक्तियों एक ओर $20^{1/2}$" लंबी नौ पंक्तियां दूसरी ओर हैं। अंतिम पंक्ति केवल $14^{1/2}$" है। अक्षरों का आकार 3/8'' है। सामने का लेख पूरी तरह सुरक्षित है। पिछली ओर के दो ऊपरी कोने टूटे हुए हैं जिससे बारहवीं पंक्ति के पहले और अंतिम दो अक्षर नहीं हैं।

प्रारंभिक मंगलाचरण को छोड़ पूरा शिलालेख संस्कृत काव्य में है जिसमें बाईस छंद हैं। पहला और अंतिम आर्य छंद, दूसरा तथा तीसरा बसंत तिलक। शेष उपजाति छंद हैं। अठारह और उन्नीस इन्द्रबज्र हैं। छंदों का चुनाव काव्य में मूल कथ्य के साथ संगति के लिए किया गया है। काव्यकार छंदों के ज्ञान से भली-भांति परिचित था यद्यपि भारी विशेषणों का प्रयोग भी किया गया है।

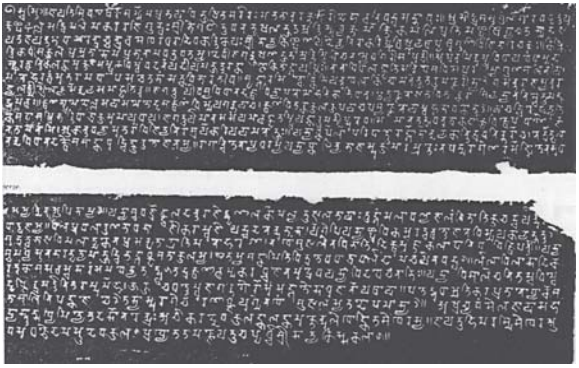

सराहन प्रशस्ति

सोमप्रभा से सुसज्जित अर्धनारीश्वर शिव का स्मरण करते हुए कवि ने सात्यकि और किष्किंधा नरेश की कन्या सोमप्रभा का वर्णन किया है। चंद्रमा-सी कांतिमान सोमप्रभा तीनों लोकों की सुंदरता लिए हुए थी। उसकी केशराशि, कपोल, लाल होंठ, हीरे से दांत, कमल से हाथ, किरणों से नाखूनों का वर्णन करते हुए कवि ने सुंदर उपमाओं का प्रयोग किया है।

अंत में पर्वतपुत्री पार्वती की सोमप्रभा के साथ और सात्यकि की चंद्रशेखर शिव के साथ मैत्री की कामना करते हुए सात्यकि द्वारा निर्मित शिवालय की ख्याति

पृथ्वी में फैलने और सात्यकि द्वारा संपूर्ण पृथ्वी को जीतने की मंगल इच्छा की गई है।

विष्णु प्रतिमा

चंद्रशेखर मंदिर के सामने एक छोटा मंदिर (8'11"ऊ8'6") है। इस मंदिर के भीतर 1'8$^{1/2"}$ ऊंची विष्णु की पाषाण प्रतिमा है। त्रिमुखी विष्णु मुख के दोनों ओर सिंह और शूकर हैं। अतः यह नृसिंह और वराह अवतार के प्रतीक हैं। विष्णु की मूर्ति के दो हाथ चौरी लिए सेवकों के ऊपर हैं, तीसरे हाथ में कमल है। चौथा टूट चुका है। चौरी लिए सेवकों के पीछे दो सेवक और दिखते हैं। इस मूर्ति में छोटी-छोटी अन्य मूर्तियां भी खुदी हुई हैं। विष्णु मुख के दोनों और भी छोटी मूर्तियां अंकित हैं। इसके साथ विष्णु के विभिन्न अवतारों की मूर्तियां भी दर्शाई गई हैं।

मूर्ति के आधार में चार पंक्तियों में लिखा है। अक्षरों का आकार 3/8" के लगभग है। लेख के अधिकांश अंश मिट चुके हैं। राजा या राणा का नाम भी मिट गया है।

मूल पाठ

(परम) भट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-1.2 - (राज्य) 'संवत् 6 1.3 (नि) क-श्री-उकुकाणिन उकुकाण स्वामि-प्रति 1.4 मा-प्रतिष्ठिता रुद्र-संहिता।

In the 6th Year of the reign of the supreme prince, the king of Kings, the supreme lord… (this image of Ukukana Svamin was created by…) the illustrious Ukukana near (the temple of) Rudra.

सराहन प्रशस्ति

मूलपाठ

ओं स्वस्ति।।
जयति शिव एश ईशस्सोमप्रभया विभूषित-शरीरः।
सत्तानुरक्त-गौरी-देहार्ध-निबद्ध-सद्भावः।। 1।।
आसीत्प्रशस्त-गुण-गौरव-वा-यु (1.2)
क्त पर्युल्लसद्विमलिमाकर-राजि-शुद्धः।

श्री-भोगटो भुवन-भूषण-भूत-मूर्तिस्सुव्यक्त-मौक्तिक-मणि-प्रतिम पृथिव्याम्।। 2।।
तस्मादजा यत जयन्त इवामरेन्द्रच्चन्द्रार्ध- शेखर-धरादिव कार्तिकेयः।(1.3)
श्री-सात्यकि प्रणयि-दैन्य-निराकरिश्णुर्विष्णुर्यथा पृथु-गुणो विजितारि- चक्कः।।3।।

किषकिन्धिकाधीश-कुले प्रसूता सोमप्रभा नाम बभूव तस्य। (1.4)
देवो जगद्भूषण-भूत-मूर्तिस्त्रिलोचनस्येव गिरीश-पुत्री।। 4।।
अपूर्वमिन्दुम्प्रुविधाय वेधास्सदा-स्फुरत्कान्ति-कलङ्क-मुक्तम्। (1.5)
सम्पूर्ण-बिंबं वदनं यदीयमभूत्तराङ्कण्टकिताङ्ग-यटिः।।5।।
नानाविधलङ्कृति-सन्निवेश-विशेष-रम्या गुणशालिनी या।
मनोहरत्वं सुतरामवाप सचेतसां सत्कवि-भारतीव।।6।। (1.6)
श्रृंगार-सिन्धो ग किमियन्नु बेला किं वा मनोभू-तरु-मञ्जरी (मंजरी) स्यात्।
वसन्त-राजस्य नु रा ज्य-लक्ष्मी स्त्रैलोक्य-सौन्दर्य-सहाहृतिर्नु।।7।। (1.7)
जगत्त्रयी-वश्य-विधान-दक्षा विद्या मनो-मोहनिकाभिधा नु।
इत्थथ्ञ्जनो जात-वितर्क-राशिर्यस्या न निश्चेतुमभू त्समर्थः।। 8।। (1.8)
क्षणम्प्रमोदोल्लसया समेतो अदृशा क्षणं विस्मय-गर्भया च।
क्षणं वितर्काकुल-रूपया च पश्यञ्जनो याम्बहुभावको भूत्।। 9।।
या च द्विरेफ-द्युति-के ा-पाशम्बिभर्ति धात्र कुसुमायुधाय। (1.9)
जगत्त्रयी-मानस-संयमार्थङ्कृतम्प्रियङ्कर्तुमभीप्सुनेव।।10।।
समानत-भ्रू-धनुषा कटाक्ष-विक्षेप-बाणैर्ज नता-मनांसि (1.10)
आक्रान्तवत्या सुतरां विजित्य निराक्षयो कारि यया मनोभूः।।11।।
यस्या कपोलौ परिपाण्डुराङ्गौ सौन्दर्य-कान्ति-द्रव-निर्भरौ च।
नेत्रेत्पला नन्द-विधान-दक्षौ शशाङ्क बुद्धिङ्करुतो जनस्य।।12।। (1.11)
रागान्वितेनाप्यधरस्य यस्या काठिन्य-भाजा सुकुमार-मूर्तेः।
न पद्मरागेण रसोज्झितेन सुधा-(र) सस्यन्दिन आपि साम्यम्।।13।। (1.12)
यस्याश्च वज्रोज्ज्वल-दन्त-राजेमृर्णाल-कौमल्य-भुजा-लतायाः।
तुङ्गं स-लावण्य-जलं विभाति कुच-द्वन्दु (र्ग मि) वात्मजस्य।।14।। (1.13)
बाल-प्रवालारुण-भाव-भाजी कराम्बुजे यद्वदनेन्दु-भासा।
योगे पि यस्या प्रविकस्वरत्वन्ध ाो जने विमय-कार्यभूशत्।।15।।
शुभ्रत्व-भाजा विमलात्मकेन प्रसर्पता याति मनोहरेण। (1.14)
नखशुां-जालेन विभाति दिक्षु मुक्ता-कलापानिव विक्षिपन्ती।।16।।
यस्या श्च मध्यं स्तन-भार-भृत्या मा भूद्विभङ्ग कृशताकुलस्य। (1.15)
एतस्य शङ्कामिति बिभ्रतेव धात्र बली-दाम-चयेन बद्धम् ।।17।।
लीला-विलासादिक-रत्न-कोश-सर्वस्व-सारं समवेत्य त्तस्थम्। (1.16)
तद्रक्षणार्थम्मपकर-ध्वजेन मुद्रेव यस्या विदधे च नाभिः।।18।।
यस्या विशाले च नितम्ब-बिंबे दृष्टर्भ्रमन्ती वितराम्मुमोह। (1.17)

ऊरू च धत्तेम्बुज-गर्भ-गौरी सुसङ्गतौ साधु-जनो यथा या ।।19।।
पतेत्सुधासूति-कर-प्रतानो व्याकोश ता-शालिनि पङ्कजे चेत्। (1.18)
तस्यास्सरागे चरणाब्ज-युग्मे नखांशु-जालस्य तदोपमा स्यात्।। 20।।
अप्रच्यवं शैलजया सहा स्यास्स्यात्सख्यमित्येतदसौ नरेन्द्रः। (1.19)
अचीकरद्देककुलङ्कलङ्क-मुक्तेन्दु-लेखाङ्कित-शेखरस्य।। 21।।
जयतु हिमरश्मि-शेखर आ-वसुधश्चेदमस्तु देवकुलम्। (1.20)
प्रख्यात्तमअ्जयतु च पृथ्वीं श्री-सात्यकिस्सकलाम्।। 22।।

अनुवाद

ऊं कल्याण हो!

देवाधिदेव भगवान् शंकर जो चंद्रप्रभा के समान भासमान हैं तथा जगज्जननी के पति के रूप में भी अर्धनारीश्वर रूप को धारण करने वाले हैं। उनकी जय हो। (1)

सारे संसार के प्राणियों में सुंदर, पृथ्वी के ऊपर मुक्ता मणि स्वरूप चंद्रमा की किरणों के समान समुज्ज्वल श्यावाला श्री भोगट था। (2)

इंद्र ने जैसे जयंत को जन्म दिया, भगवान् शंकर से जैसे कुमार कार्तिकेय उत्पन्न हुए, वैसे ही दीन-दुखियों का दुःख हरने वाले एवं शत्रुओं के संहारक उससे सात्यकि उत्पन्न हुए जो विष्णु से समान पराक्रमी थे। (3)

किष्किंधाधीश की पुत्री सोमप्रभा उनकी पत्नी हुई। जैसे माता गौरी भगवान् शिव की प्रिया और सर्वजगत् का भूषण है इसी प्रकार की थी यह सोमप्रभा। (4)

जब विधाता ने उसके मुखमंडल का निर्माण पूर्ण कर दिया तो चंद्रमा से भी वह सुंदर था क्योंकि कलंकहीन था तथा घटता-बढ़ता नहीं था। समान रूप से एकरस रहता था। तब विधाता का मन भी उस रूप पर मोहित हो गया। (5)

नाना अलंकारों से विभूषित एवं अनेक अलभ्य गुणों से युक्त वह रानी इसी प्रकार सबको आनंदित करती जैसे सुकवि की संस्कृत वाणी सहृदयों को आह्लादित करती है। (6)

क्या वह सौंदर्य सिंधु का प्रवाह थी अथवा कामवृक्ष की मंजरी या सौंदर्य राज्य की राजलक्ष्मी? क्या तीनों लोकों की सुंदरता उसमें कहीं एक रूप में ही सिमटकर तो नहीं आ गई थी ! (7)

त्रिजगत को वश में करने की शक्ति रखने वाली या विद्या से विद्वानों, विज्ञों

का मन मोहने वाली थी वह और जनसमाज इस प्रकार के अनेक तर्क-वितर्कों के कारण कुछ निश्चित न कर सका कि वह क्या है। (8)

जनसमाज कभी आनंद से पूर्ण दृष्टि से तो कभी आश्चर्यमयी दृष्टि से और कभी अनेक तर्क-वितर्कमयी दृष्टि से उसे देखकर अतिशय भावुक हो जाता था। (9)

मानो विधाता ने उसकी केशराशि भ्रमरों के समान अतिशय काली की जिससे कामदेव त्रिजगत का मोहन कर सके। (10)

अपनी झुकाई हुई भौंहों रूपी धनुष तथा दोनों नेत्र रूपी बाणों से जनमानस पर आक्रमण करके उसने कामदेव को भी निराश्रय कर दिया। अर्थात् कामदेव मनोभूषया मन में रहता है पर उसने जन-जन के मनों पर अपने भौंहों रूपी धनुष से नेत्र बाणों का प्रहार कर दिया तो काम स्वयं ही निराश्रय हो गया। (11)

सोमप्रभा के कपोल बिलकुल श्वेत थे मानो सौंदर्य की शोभा के रस से उनका निर्माण हुआ हो। परिणामस्वरूप लोगों के नेत्र रूपी कमलों के लिए उसका मुख भ्रम पैदा करने लगा। (12)

सूर्य-कांतमणि या माणिक्य उसके अधरों के सामने कुछ भी नहीं लगते थे क्योंकि माणिक्य का रंग लाल तो होता है पर उसमें सोमप्रभा के होंठों की सरसता तथा कोमलता कहां ! (13)

उसके दांत हीरों के समान चमकदार थे। उसकी भुजाएं कमलदंड के समान कोमल और उसके स्तन कठोर ऊंचे रस भरे मानो कामदेव का विशाल प्रासाद हो। (14)

उसके कमलरूपी हाथ उसके चंद्र रूपी मुख के सामने जब होते तो लोगों को भ्रम होता कि चंद्र किरणों से कमलिकाएं खिल रही हों। (15)

जब वह हाथ हिलाती तो ऐसा भ्रम होता लोगों के मन में कि वह मोतियों के समूह को लुटा रही है क्योंकि उसके नाखून मोतियों से भी सुंदर और चमकदार श्वेत-पीत वर्ण के थे। (16)

विधाता को भ्रम हुआ कि कुचभार से कहीं सोमप्रभा की कमर टूट न जाए। इसी कारण शायद उसकी कमर में त्रिवली डाल दी। (त्रिवली कमर में तीन रेखाकार वलियां होती हैं, जिसे स्त्री सौंदर्य का विशेष गुण माना जाता है)। (17)

सोमप्रभा के पास सौंदर्य, औदार्य, शील आदि अनेक गुण रूपी रत्न थे। कवि कल्पना करता है कि मानो इन सभी रत्नों को सुरक्षित स्थान में गुप्त रखने के लिए कामदेव ने उसे गुप्त नाभि प्रदान की। (गुप्त अंदर की ओर झुकी हुई नाभि

भी सौंदर्य का लक्षण है)। (18)

उसका नितंब भाग विशाल होने के कारण दृष्टिमोहक था। उसकी दोनों जांघें कमलपुष्प के मध्यवर्ण के समान श्वेत-पीत थीं मानो वे दो साधु पुरुष हों जिनकी दृष्टि में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। (19)

खिलते हुए कमल के ऊपर जब चंद्रमा की किरणों का स्पर्श होता है तो तब जो दृश्य बनता है वही दृश्य सोमप्रभा के चरण कमलों पर जब उसके चरणनख रूपी चंद्रमा की किरणें पड़ती हैं तब बनता है। (ये सब लक्षण सामुद्रिक शास्त्रानुसार महान् सौंदर्य के हैं)। (20)

भगवान् शंकर के मस्तक पर अर्धेंदु अर्थात् आधा चंद्रमा होता है। कवि कल्पना करता है कि क्या दुर्गा और सोमप्रभा की इतनी गहरी मित्रता रही होगी और इसी कारण राजकुमार सात्यकि ने इस मंदिर का निर्माण कराया होगा जिसमें शिव के मस्तक पर केवल अर्धाकार चंद्रमा को अंकित किया गया है, जिसमें कलंक अर्थात् कालापन नहीं। (21)

भगवान् शंकर की जयकार हो जिनके मस्तक पर चंद्रमा शोभायमान है। यह मंदिर सारे संसार में प्रसिद्ध हो। श्री सात्यकि महाराज समस्त भूमंडल के ऊपर विजय प्राप्त करें। (22)

प्रवासी पंछी

भेड़ा ता केरिया पाहलणुआं तू घरा जो ईएं हो जानी।
घरा जो कियां ईणा भेड़ा सो लगूरा हो जानी।।
तिन सो सूई बाकरियां ते तिन सो सूईयां भेड़लियां।
सो सठ सूइयां बाकिरयां ते सो सठ सूइयां भेड़लियां।।
सुंघड़ लग्गा हो संघड़ैणा मने बुरी लग्गी हो जानी।
घरा जो कियां ईणा भेडा सो लगूरा हो जानी।।
दोई बल्ला अक्खें हंडू रिझे केली कियां खाणा हो जानी।
दोई बल्ला सेजे मंजलू मुं केली कियां सोणा हो जानी।।
भेड़ों के पुहाल ! घर आ जाओ !
घर कैसे आऊं। यहां भेड़ों ने बच्चे जने हैं!।
तीन सौ बकरियां और तीन सौ भेड़े सूई हैं।
सौ साठ बकरियां और सौ साठ भेंड़े सुई हैं।
सुंघड़ (विरह की उदासी) लगा है, मन बुरा-बुरा हो रहा है।
घर कैसे आऊं। यहां भेड़ों ने बच्चे जने हैं।
दो खानों वाली हण्डिया में साग पक रहा है, मैं अकेली कैसे खाऊं।
दो सेज वाली खाट सजी है, मैं अकेली कैसे सोऊं।

ऐसे-ऐसे मन को छू लेने वाले गीत उस विरह वेदना को प्रकट करते हैं जो एक गद्दी अपने प्रवासी जीवन में और एक गद्दण अकेली अपने घर में सदा झेलती है। जो गद्दी (प्रायः युवा) भेड़-बकरियों के साथ जाता है, उसे 'पुहाल' कहा जाता है। एक परिवार से एक पुहाल तो अवश्य बनता ही है। पुहाल अपने गांव-घर से दूर

गद्दी महिला

भेड़-बकरियों का धण लिए सदा चलता रहता है। इसका एकमात्र साथी गद्दी कुत्ता होता है और खदेड़ने को भेड़-बकरियों का धण। अपनी संगिनी बांसुरी में जब वह विरह की तान छेड़ता है, शिखर घाटियों में, तब पपीहे जैसे पक्षी उसका उत्तर देते हैं। कभी बर्फीले जोत पर शंकर से अपनी भेड़ों की ख़ैर मांगता है तो कभी गहरे नालों से वह जोर से गा उठता है।

उसका जीवन तो बीतता है शिखर-घाटियों में। उधर घर में पत्नी बिछुड़ने की व्यथा को गीतों के माध्यम से बाहर निकालती है। विरह की वेदना से निकले आंसुओं से वह घर में भीगती है तो प्रियतम परदेश में :

असे तो सिज्जे घरे अपणे, प्यारू सिज्जू परदेस हो।

गद्दियों का धण : भेड़

हम तो अपने घर में भीग गए, प्यारू परदेस में भीगा। 'प्यारू' एक नाम भी है, प्रियतम के लिए संबोधन भी।

प्यारी प्यारी हो क्या लांदा मेरेया प्यारूआ।
बाईं पुर भाले हो तेरे दोस्त मेरेया प्यारूआ।।
जोता री खजूरी जो मत छेड़े मेरेया प्यारूआ।
जोता पुर भाले हो मेरी पतलिया भाखा प्यारूआ।।
अज छतराड़ी हो डेरा राखा मेरेया प्यारूआ।
मंगले खण्डोरे हो बुरे बारे मेरेआ प्यारूआ।।

काति रे बिछड़े हो असां मिलणा क्धाड़ी प्यारूआ।
काति रे बिछड़े हो असां मिंजरा जो मिलणा प्यारूआ।।
तुमने 'प्यारी प्यारी' क्या लगा रखा है मेरे प्यारू।
तुम्हारे दोस्त बाबड़ी पर बैठे तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं।।
मैं जोत की (चढ़ाई) थकी हुई हूं, मुझे मत छेड़ना।
जोत के उमर मेरी पतली (सुरीली) आवाज़ का इंतजार करना।।
आज छतराड़ी हैं तो कल राख में होंगे।
मंगल को बिछड़े हैं यह बुरा (अशुभ) बार होता है।।
कार्तिक मास के बिछुड़े हम कब मिलेंगे!
कार्तिक मास के बिछुड़े हम मिंजर में मिलेंगे।

इन गीतों के साधारण अर्थ में भावार्थ बहुत गहरा है। गीत की एक-एक पंक्ति से यहां व्यथित जीवन और विश्वासों की कड़ियां जुड़ती हैं। एक-एक पंक्ति लंबी व्याख्या की मांग करती है।

चंबा, विशेषकर भरमौर के गीतों में जो विरह है, कसक है, मिठास है उसका यही कारण है। गीत सुनते हुए मन में एक हूक सी उठती है।

छह ऋतुएं बारह महीने चला रहने वाला एकमात्र आदि कबीला है हिमाचल प्रदेश का गद्दी समुदाय। गद्दियों का मूल पड़ाव 'गधेरन' है। जहां से ये अपना सफर शुरू करते हैं। गर्मियों में गधरेन एक बार पूरा बसता है।

सूने घर गीतों से गूंजते हैं। इन दिनों पुहाल भी घर आते हैं और मंगल मनाते हैं। जिला कांगड़ा से प्रवास के बाद गद्दी परिवार भी अपने घर लौटते हैं। घर में 'सुर' लगाई जाती है और उत्सव मनाया जाता है। इन दिनों बसो या बसोआ 'वैशाखी' का त्यौहार विशेष रूप में मनाया जाता है। जब सारा परिवार अपनी ज़मीन, अपने घर पर इकट्ठा होता है।

अपने घर में इनका प्रवास ही कहा जा सकता है। यह समय बहुत कम होता है। मार्च-अप्रैल तक गधेरन वापसी और सितंबर तक किसी तरह फ़सल इकट्ठी कर पुनः जांधरा जाने की तैयारी। सर्दियों में यहां रहना कठिन है इसलिए कुछ मजबूर लोग ही रहते हैं।

कांगड़ा क्षेत्र को ये लोग 'जांधर' कहते हैं और यहां के वासियों जांधरा। कांगड़ा में पहले ये गोशाला या घरों के किसी अलग कमरे में रहा करते थे। पुरुष मजदूरी करते, औरतें धान कूटतीं। अब बहुत से लोगों ने ज़मीनें खरीद ली हैं और घर बना लिए हैं। धौलाधार की गोद में धर्मशाला, पालमपुर, बैजनाथ के ऊपरी क्षेत्रों

में अधिकांश लोग अब स्थाई तौर पर बस गए हैं और भरमौर की तरह राख, बिंद्रावणी, दियोल जैसे नाम भी उन गांवों दे को दिए गए हैं। कुछ स्थायी वासी ऐसे भी हैं जो गधेरन नहीं जाते किंतु इनकी संख्या कम है। प्रायः हर परिवार की जमीन और घर गधेरन में हैं। वैसे भी सरकारी सुविधा के लिए केवल गधेरन, वासी गद्दी ही जनजातीय श्रेणी में आते हैं, कांगड़ावासी नहीं।

जांधर के लोग गद्दियों को अपना 'मित्र' बनाते हैं। यह मैत्री विवाहादि उत्सवों के समय निभाई जाती है। जांधर में वैसे भी गद्दी को 'मित्तर' कहकर संबोधित किया जाता है और 'गद्दी मित्तर' अपने भोलेपन के लिए प्रसिद्ध हैं।

पुहाल गर्मियों में भी अपने घर अधिक दिन तक नहीं रह सकता। उसे तो भेड़-बकरियों को लेकर कुगति दर्रा पार कर चंद्रभागा किनारे लाहुल की पट्टन घाटी में पहुंचना है। बर्फ पिघलने पर लाहुल के शिखरों पर नर्म और ताकतवर घास उगती है।

लोग कहते हैं गद्दी जैसा मुसाफिर नहीं। प्रवास के दौरान गद्दी को किसी टेंट या ट्रेकिंग के सामान की आवश्यकता नहीं। किसी गुफा में, किसी बड़े पत्थर के नीचे, पेड़ के नीचे या खुले आकाश के नीचे उसका बसेरा है। अपने मोटे पट्टू के नीचे उकड़ूं बैठा हुआ भी वह सो लेता है चाहे ऊपर से वर्षा गिर रही हो, ओले गिर रहे हों या तूफानी हवा हो। पीठ पर उठाए छिक्के में मक्की का आटा पड़ा रहता है। कहीं दो पत्थर लगा कर आग जलाई और मोटी रोटी बना ली। या बकरी का दूध गरम कर पी लिया। कभी सूती या ऊनी सुथण (पाजामा) या कभी नंगी टांगें। ऊपर चोला, सिर पर ऊनी टोपू। कमर में गात्री या डोरा। डोरा कस जाने से चोले में कमर के ऊपर दो जेबें बन जाती हैं, जिन्हें 'खोख' कहा जाता है। खोख में कभी कभी भेड़-बकरियों के चार-पांच नवजात बच्चे भी रहते हैं। कभी गद्दण साथ चली हो तो वह भी पीठ पर बोझा उठाती है। उसके छिक्के के साथ अल्यूमनियम के बर्तन अवश्य बंधे रहते हैं। उसकी कमर में भी काला डोरा। ऊपर चोली, नीचे घाघरा, जिसे लुआंचड़ी कहा जाता है, टांगों में सुथण। गले में कीमती पत्थरों के मणकों की माला, सिर में चक, माथे में मांगटिक्का, नाक में लौंग, हाथ में कंगणू और पैरों में मौचडू।

गद्दी एक ऐसा आदि प्राणी है जो आज भी आग जलाने के लिए चकमक पत्थर का प्रयोग करता है। डोरे के साथ 'रूणका' लटका रहता है जो लोहे का एक टुकड़ा होता है। चमड़े के बटुए में 'भुजलू' या 'कफ्फी' घास या जंगली वनस्पति के पशे। रूणके को चकमक पत्थर से टकराकर भुजलू घास से आग जलाई जाती है।

हालांकि अब समय बदला है। बचपन में जिन गद्दियों को चोला-डोरा पहने सी-सी कर सीटी बजाते धण हांकते देखा था, इस बार भरमौर तक कोई गद्दी अपनी वेशभूषा में नहीं दिखाई दिया। भरमौर से आगे केवल एक वृद्ध दंपत्ति चोला-डोरा,

लुआंचड़ी पहने जा रहा था। गद्दी लड़के धण के साथ तो चलते हैं, कभी पैंट, कभी जीन पहन लेते हैं। फिर भी विवाह या अन्य उत्सवों पर आज भी उन्हें अपनी वेशभूषा से सुसज्जित देखा जा सकता है। 'सुर' की खुमारी में आज भी गद्दी सीं-सीं करते 'डंडारस' नाचते हैं, स्त्रियां 'घुरेई'। लोक गीतों की ताल आज भी गूंजती है। कुंजू चंचलो, सुन्नी-भूंकू, जयचंद-नोखू के गीत एंचली, घुरेई, चिड़ी, द्रुभड़ी गीत आज भी उसी मनोभावना और मनोयोग से गाए जाते हैं।

लोक में रचे-बसे लोक के गीत

चंबा और भरमौर के लोकगीतों की अपनी एक अलग पहचान है। विरह प्रधान होने के कारण इन गीतों में जो एक कसक, एक वेदना है वह यहां की मोहक और मन को छू लेने वाली धुनों में और भी मुखर हो उठती है। गद्दी पुहाल को सदा चलते रहना है। उधर इनकी पत्नियां, परिवार अकेले रहते हैं। वियोग के क्षणों में किसी बहाने से बुलाना, न आने के बहाने और परदेस में पति के कारण वेदना इन गीतों में व्यक्त हुई है।

भरमौर के विवाह गीतों पर कांगड़ा का प्रभाव है। भरमौर के गद्दी तथा परिवार सर्दियों में कांगड़ा की पालमपुर घाटी में रहते हैं। इस ओर भी युवक विवाह के बाद फौज में जाते हैं जहां वर्षा में एक बार छुट्टी मिलती है। अतः प्रवासी पति को बुलाने के लिए बहाने ढूंढ़े जाते हैं-

लिखि लिखि चिट्ठियां मैं भेजां, हां मैं भेजां
माता तम्हारी बीमार ढोला, घरे आई जाणा।
लिखि लिखि चिट्ठियां मैं भेजां, हां मैं भेजां।
भैण तम्हारी बीमार ढोला, घरे आई जाणा।

विवाह गीत, जिंहें ब्याह-शादियों में या वैसे भी बैठकर औरतें गाती हैं, 'द्रुभड़ी' या 'द्रुएं' कहा जाता है।

एक द्रुएं गीत में दामाद अपनी विवाहिता को घर बुलाता है। सास बहाने लगाती है। कभी वह कहती है कि लड़की तो पांव से नंगी है, कभी कहती है कमर से नंगी है, कभी कहती है सिर से। दामाद उसे जूते, घाघरा, चादर आदि देने का वचन देता है।

घुरैही वे लोकगीत हैं जो विवाह या अन्य अवसरों पर महिलाओं द्वारा गाए जाते हैं। और इनमें एक घेरे में नृत्य भी किया जाता है। कुछ महिलाएं गाती हैं, शेष उन्हीं पंक्तियों को दोहराती हैं। विवाहादि अवसरों पर गद्दी भी गोलाकार धीमा नृत्य करते हैं जिसे डंडारस कहा जाता है।

सर्दियों के बाद गाए जाने वाले घुरैही गीतों में धार्मिक, शृंगारिक सभी प्रकार के होते हैं। घुरैही में 'सियाहरण' का प्रसंग बड़ा लोकप्रिय है-

राम ते लछमण चौपड़ खेले, सिया राणी कढंदी कसीदा हो।
इक बाजी बहिया, दूरी बाणे लाया पाणी केरी लंगदी प्यासा हो।।
कुण होला सुणंदा, कुण होला गुणंदा, कुण प्याला ठंडा पाणी हो।
सिआ होली सुणदी, सिआ होली गुणदी, सिया पियाली ठंडा पाणी हो।।

अते कठी भोला मेरा सीस घड़ोलू, कठी भोला नारियल बिन्ना हो।
घड़े री घड़याणी तेरा सीस घड़ोलू, कीलाणियां नारियल बिन्ना हो।।

सिया हरण के इस गीत में राम-लक्ष्मण द्वारा चौपड़ खेलना, राम को प्यास लगना, सीता द्वारा घड़े में पानी भरती बार नाक के लौंग का गुम जाना, स्वर्ण मृग देखना और राम द्वारा वन-वन मृग ढूंढ़ना आदि घटनाओं का वर्णन है।

अंचली या एंचली गीत

अंचली एक धार्मिक लोक गीत है जो 'नवाला' या 'नुआला़' के अवसर पर चार पुरुष गायकों द्वारा गाया जाता है। ढोलक, नगारा और कुंभ पर रखी थाली बजाकर ये गीत गाए जाते हैं। नुआला़ शिव पूजा का उत्सव है। किसी अभीष्ट की प्राप्ति के लिए शिवजी को नुआला़ की मनौती मांगी जाती है। आटे द्वारा मंडप बनाकर खानों में तिल, चावल, बबरू रखे जाते हैं। भेंड़े की बली दी जाती है जिसका सिर पूजा के लिए रात भर रखा जाता है।

सारी रात चलने वाले इस उत्सव में शिव स्तुति का गायन होता है जिसे 'शिवीण' कहते हैं। राम कथा का 'रामीण' कहते हैं।

शिवीण लंबा गीत है जो दक्षिण देश में सिद्ध योगी के आगमन से आरंभ होता है। इसमें पूरी पूजन विधि वर्णन के साथ दक्षिण देश में ही मालिन द्वारा हार गूंथने का वर्णन है। शिव बाग में मालिन से मिलते हैं। भंवरे द्वारा बाग उजाड़ने पर शिवजी भंवरे को कैद कर लेते हैं और मालिन के कहने पर छोड़ देते हैं।

ि शव विवाह का वर्णन विस्तार से इस गीत में किया गया है-

गौरा पुछंदी माता रणसिंगा बजंदा कै आया
माता बोली ''धिए तेरा बैहु लगना जो आया''
गौरां बोली ''तैं कोढ़ी कलंकी रे लड़ै लाहे''
रोई रोई रोजना लाई

''मौलिया तुज्जो भाणजीरा दोष लगला
तैं भंगी सराबीरे लड़े लाई''
तां मौला बोले रूंए मत भाणजिए
तुजो दाज सुआज भरी देला
''तां फिरी गौरा बोली'' ''भेड़ बकरी दाज नहीं लैणी
मैं हुंदी गदेटी तां भेड़-बकरी चारी लैंदी।''

चंबा में दरबारी गायकी भी प्रसिद्ध है जो केवल चंबा शहर में ही गाई जाती है। पहले पंजाब से गायक राजदरबार में आया करते थे जो पंजाबी में गाते थे। आज भी ये गीत पंजाबी मिश्रित चंबयाली में गाए जाते हैं जो पक्के रागों पर आधारित हैं-

बागीं खिड़ रहे दो केले, रब्ब बिच्छड़यां नूं मेले
तैनूं फट पबे तलवार दा
कदेआ फुलां वाली सेज ते कदेआ मौज बहार दा
जैसे गीत इसके उदाहरण हैं।

वास्तव में लोकगीतों की आत्मा बसती है उन गीतों में जो गद्दी अपनी बांसुरी की टेर पर पहाड़ी दर पहाड़ी गाता फिरता है या जो गीत चरागाहों में, घाटियों में गाए जाते हैं, जिनमें समाज के दिलों की धड़कन बसती है।

ऐसे गीतों को 'फाटेहड्डू' कहा जाता है। जो गीत ऊंचे शिखरों, गहन घाटियों में मदमस्त होकर गाए जाते हैं, वही मन की गहराइयों से निकलते हैं। सुर (शराब) के नशे में डूबकर गाए जाने वाले गीतों में श्रृंगार हो या प्रेम, विरह या वेदना, चाहे अश्लीलता का पुट हो, ये गीत सबके मनों में बसे रहते हैं।

इन गीतों में अनाम गीतकारों ने गहन चिंतन के बाद आश्चर्यजनक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जो काव्य की ऊंचाइयों को छूते हैं।

छिंबी

छिम्बी हो छिम्बी पाणी जो गई हो
तेरड़े सौंह् छिम्बी पाणी जो गई हो।
दन्द कदेई ऐस्सा छिम्बी दे जियां खिड़े खटनालू
दन्द हेरी मत भुलै राजा जी हाऊं ता जाति री छिम्बी।।
हाखी कदेई ऐस्सा छिम्बी दी जियां सुरजे री लोई।।
हाखी हेरी मत भुल्ले राजा जी हाऊं ता जाति री छिम्बी।
हाथ कदेई ऐस्सा छिम्बी दे जियां हलुए री डाली
हाथ हेरी मत भुलै राजा जी हाऊं तां जाति री छिम्बी।।

होठ कदेई ऐस्सा छिम्बी दे जियां पाना रे पट्ठे
होठ हेरी मत भुलै राजा जी हाऊं ता जाति री छिम्बी।।
इक लख दिता तिजो दो लख दिता जाति देयां बदलाई
नि बो लैणे लख दो लख जाति नी बदलाणी।।

पानी भरने के लिए जा रही छिंबी के सौंदर्य का वर्णन इस लोकगीत का मर्म है। छिंबी की दंत पंक्ति ऐसी है जैसे खटनालू के फूल खिले हों। उसकी आंखें सूरज की रोशनी की तरह दमक रही हैं। हाथ ऐसे कि जैसे हलुए (मेंहदी का पौधा) की डाली हो। होंठ जैसे पान के पत्ते।

छिंबी अपने अंगों की प्रशंसा पर बार-बार कहती है कि हे राजा! मेरे अंगों को देखकर इस बात को मत भूल कि मैं जाति की छिंबी हूं। अंत में राजा कहता है कि मैंने तुझे एक लाख दिया, दो लाख दिया। तू अपनी जाति बदल दे। छिंबी का उत्तर है कि मुझे नहीं चाहिए तुम्हारे लाख दो लाख, मैंने जाति नहीं बदलवानी।

राजा तेरे गोरखेयां ने लुटेया पहाड़
लुटेया पहाड़ गोरी दे मत्थे दा सिंगार।
तीसा लुटेया बैरा लुटया भांदल की हार
चाजु दी चुरैहणी लुटियां लुटी बांकी नार।।
सोना लुटेया चांदी लुटेया लुटेया बाज़ार
सेजां सुत्तियां कामनी लुटियां लुटी बांकी नार।।
होठां दी मैं हटड़ी बणादियां दंदां दा बाजार
जुल्फां दी मैं त्रकड़ी बणादियां नैणा दा बाजार।।
नीले पीले बांस मंगानिया बंगला पुआनियां
बंगले दे बिच वही के सजणा तेरा जस गानियां।।

राजा तेरे गोरखों ने पहाड़ लूट लिया। पहाड़, जो गोरी के माथे के शृंगार की भांति था। तीसा लूटा, बैरागढ़ भी लूटा, भांदल की हार भी लूटी। चांजू की चुरैहणियां लूट लीं। सोना लूटा, चांदी लूटा, पूरा बाजार का बाजार लूट लिया। सेज पर सोई हुई सुंदरियां लूट लीं।

होठों की मैं हटड़ी (छोटी दुकान) बनाती हूं, दांतों का बाज़ार। अपनी केशराशि का तराजू, नयनों का व्यापार। नीले-पीले रंग के बांस मंगवाकर बंगला बनवाती हूं। बंगले में बैठकर हे साजन! तुम्हारे यश के गुण गाती हूं।

ऐतिहासिक घटना के साथ-साथ इस गीत में कवि ने अपनी कल्पना शक्ति का भी परिचय दिया है।

ब्रह्मी

चिट्टी चादर बछाणें पाणी ब्रह्मीये
ढकणे के लैणा हो।
तेरी दोहड़ बछाणें पाणी ब्रह्मीये
तेरी बांही रा सराहणा हो।
तेरी कणकां रा होया दाणा दाणा ब्रह्मीये
घरे, किह्यां जाणा हो
तेरी चादरा री होई लीरा लीरा ब्रह्मीये
घरे किह्यां जाणा हो।
रेढ़ी-रेढ़ी तां घरा जो नबेड़ी ब्रह्मीये
अबे कुनी छेड़ी हो।
तेरी मेरी तां ढिकलू री जोड़ी ब्रह्मीये
कुनी बेरिये बछौड़ी हो।

नायिका (ब्रह्मी) को संबोधित इस गीत में विभिन्नता के साथ-साथ शृंगार का मिश्रण अद्‌भुत है। नायक कहता है कि सफेद चादर तो बिस्तर पर बिछा लेंगे किंतु ओढ़ने को क्या लेंगे। दोह्ड़ (पट्टू) बिछा लेंगे, सिरहाना तेरी बांह का ही लेना होगा। पहाड़ी दर पहाड़ी तुझे घर से भगाया, अब फिर किसने छेड़ दिया !

तुम्हारी कणक दाना दाना होकर बिखर गई, अब घर कैसे जाएं! तेरी चादर टुकड़ा-टुकड़ा हो गई, अब घर कैसे जाएं। तुम्हारी-मेरी ढिकलू (बकरी की तरह जानवर जो सदा हिरन की भांति जोड़ी में रहता है) की जोड़ी है, यह किसी बैरी ने बिछोड़ दी।

नैणो

चिट्टे दंद खोड़े रा दंदासा हो मेरिये नैणो।
नैणो नैणो हांकां कुनी लाईयां हो मेरेया मेटा।।
नैणो बैठी धारगले री बाईं हो मेरेया मेटा।।
बुरे हुंदे गाड़ जंगलाती हो मेरिये मेटा।।
खुस्सी लेंदे हाथा री दराटी हो मेरेया मेटा।।
चिट्टे दंद खोड़े रा दंदासा हो मेरिये नैणो।
कुनी पाया दंदडू रा हासा हो मेरेया मेटा।।

मोतियों से सफेद दांत हैं और उस पर अखरोट का दंदासा लगा रखा है। मेरे मेट! नैणो-नैणो करके आवाज कौन लगा रहा है ? नैणो तो धारगले की बावड़ी

में बैठी हुई है।

जंगलात के गार्ड बहुत बुरे होते हैं। वे हाथ से दराती छीन लेते हैं। मोतियों से सफेद दांत हैं जिन पर अखरोट का दंदासा लगा रखा है (जिससे होठ सुर्ख लाल हो गए हैं) किसने मेरे दांतों की हंसी उड़ाई है।

सुरा केरे मघडू जो छेड़े रोआ करी गल्ला लाणी हों।
ओ सज्जण महणु घरे आए रिझ घड़ोलुआ।
त्रुड़ा मंजोलू ढिल्ली बाण दुंहीं जिहणा कियां सोणा हो।
किलूहे-किलूहे मेरिए जानी दुंही जिहणा किया सोणा हो।
गल्ला लाणी गल्ला लाणी मेरी जानी।

इस हृदयग्राही गीत में साजन के घर आने की बात है। सुर (सुरा) का मघडू (छोटा घड़ा) तैयार कर रो-रोकर बातें करनी हैं। साजन घर आए हैं। ए घड़ोलु जल्दी पककर तैयार हो जा। चारपाई टूटी हुई है, चारपाई का बाण ढीला है, इस पर दो जने कैसे सोएंगे! और अकेले-अकेले कैसे सोए। आपसी बातचीत भी करनी है।

त्रुटि ता मेरे छिकणू री काछी बैरिया भाले हो
मुक्की ता तेरे खल्हडू री खरच बैरिया भाले हो
मुक्कु ता मेरे बिबडू रा पाणी बैरिया भाले हो
लिहसी जंघा जोत कियां लाणा बैरिया भाले हो।

कठिन जोत को लांघने की मानसिकता इस गीत में है। दो साथी या प्रेमी जोत लांघने के लिए सफर करते हैं। जोत में एक दूसरे का सहारा अवश्य चाहिए।

एक कहता है (या कहती है) कि मेरे छिकणु (पीठ के बोझे) की काछी (रस्सी) टूट गई है, मेरी प्रतीक्षा करना। मेरी खल्हडू (खाल का झोला) का अनाज समाप्त हो गया है, मेरी प्रतीक्षा करना। मेरी बीमारी से कमजोर टांगें जोत कैसे लांघ पाएंगी, वैरी! मेरी प्रतीक्षा करना।

ऊंची ऊंची रेढ़ी

ऊंची ऊंची रेढ़ी हो बंसरी बजांदा बो बैरिया।
बजदी सुणी मुरली हो रोई रोई भिजो बो बैरिया।।
हत्था तेरे छतरी हो जाति दा तू खतरी बो बैरिया।
घरे रे बहाने हो मिली करी जायां बो बैरिया।।
हत्था बो नरेलू हो चिलम तमाकू बो बैरिया।
अग्गी रे बहाने हो मिली करी जायां बो बैरिया।।
हत्था तेरे दराटी हो घरे तेरे चाची बो बैरिया।

घाए दे बहाने हो मिली करी जायां बैरिया।।

यह गीत ऊंची पहाड़ी पर बांसुरी बजाते हुए जाते प्रेमी को समर्पित है। ऊंची पहाड़ी पर प्रेमी बांसुरी बजा रहा है। मुरली बजते हुए सुनकर प्रेमिका रो-रोकर भीगी जा रही है। तुम्हारे हाथ में छतरी है, जाति के तुम खत्री हो, घर आने के बहाने मिलकर जाना। तुम्हारे हाथ में दराती है, घर में तुम्हारी चाची है। घास के बहाने मिलकर जाना बैरी।

मैहले दियां जातरां लोढ़ी रा पाणी।
किह्ला मत पींदा ढोला सराबिया।।
पहला डेरा लाया सरेई दे घराटा हो।
दूजा डेरा लाया चेरिये री कोठी हो।
त्रिजा डेरा लाणा लोढ़िये दे नाले हो।।
सीसे दा गलास मोतिया सराब।
किह्ला मत पींदा ढोला सराबिया।।

यह गीत मैहले की जातरा (धार्मिक यात्रा) या मेले पर जाने के निमित्त है। मैहले की जातर है और वहां बहते लोढ़ी नाले का पानी है। इस पानी को तू अकेले मत पीना मेरे प्रियतम!

पहला डेरा (पड़ाव) सरेई के घराट में लगा, दूसरा डेरा चेरिये की कोठी में और तीसरा लोढ़ी के नाले में। शीशे का गिलास है, मोतिया शराब है। मेरे प्रियतम! इसे अकेले मत पीना।

नत्थ चंबा

राजा हरिसिंघ और गद्दण

यह गीत गुलेर के राजा हरिसिंह और हीरां गद्दण की प्रेमगाथा है। बकरियां चराती हुई गद्दण राजा हरिसिंह को भा गई। वह उसे रानी बना गुलेर ले गया। हीरां गद्दण को अपने गद्दी के नाम से छुरी सी चल जाती है जो पीछे छूट गया है। महलों के नीचे गद्दी का भेड़ें चराना और गद्दण का मुरली की तान सुनना हृदयग्राही है।

कांगड़ा के राजा या राजपरिवार के कंवर द्वारा गद्दण को उठवा कर महलों में डालने का किस्सा कांगड़ा और चंबा दोनों जगह बखाना जाता है। राजा को हरिसिंघ संबोधित किया गया है जबकि कांगड़ा के राजा अपने नाम के साथ 'चंद' लगाते थे और राजा के भाई या अन्य मियां लोग 'सिंघ'। यह संभव है यह राजा का भाई हो जो भेड़ें चराती गद्दण पर आसक्त हो गया और उसे उठवा कर महलों में डाल लिया। गीत में कहीं गुलेर तो कहीं नादौण का ज़िक्र है। ये दोनों ही कांगड़ा की शाखाएं थीं। कांगड़ा के राजा संसारचंद (1775-1823) ने नौखू नाम की गद्दण से विवाह किया था। रणजीतसिंह द्वारा कांगड़ा किला व राज्य छीन लेने पर राजा नादौण में रहने लगा था। नादौन में संसारचंद की गद्दण रानी से जुधवीर चंद उत्तराधिकारी हुआ। जुधबीर चंद के पुत्रों में राजा अमर चंद उत्तराधिकारी हुआ जिसके एक भाई का नाम मियां हरिसिंह (जन्म 1840) था। प्रस्तुत प्रचलित गीत राजा संसार चंद तथा नौखू गद्दण के विवाह पर आधारित नहीं लगता। संभव है यह मियां हरिसिंघ हो। या गुलेर के किसी राजा का किस्सा हो, जो अपने नाम के साथ 'चंद' के स्थान पर 'सिंह' लगाने लगे थे।

चंबा या भरमौर में गाए जाने वाले इस गीत में यहां की बोली के शब्द ज्यादा हैं, किस्सा एक ही है। लोकगीत में राजा द्वारा गद्दण को महलों में रहने के अनेक प्रलोभन दिए जाने का उल्लेख है किंतु गद्दण को ज़मीन पर सोना, भेड़ बकरियों के साथ रहना और अपने गद्दी का संग ही अच्छा लगता है। गीत में बाड़ी के जंगल का जिक्र है और गद्दण का नाम हीरां है। राजा गद्दण को मैदान में रहने, पलंग पर सोने, लाख, दो लाख देने और वजीरी तक देने की बात करता है मगर गद्दण इन सारे प्रलोभनों को ठुकरा कर अपनी भेड़ बकरियों, अपने गद्दी के लिए रोती है।

नगारे चुक्की राजा हेड़े जो चढ़ेया
बांकी जिही गद्दण नजरी आई
ओ! मेरिए बांकिए गद्दणी!

चार सपाही राजें दड़ बड़ भेजे
बांही ते चुक्की डोल़ें पाई
ओ! मेरिए बांकिए गद्दणी!
छड्डी तां देणा गद्दणी पहाड़ां दा हण्डणा
गधेरने दा बस्सणा
पदरे नदौणे जो आ
ओ! मेरिए बांकिए गद्दणी!
महलां दा रहणा ओ राजा असां जो नी सजदा
मने नी ओ लगदा
पहाड़ा दा रहणा चंगा
ओ! मेरिए बांकिए गद्दणी!
छड्डी तां देणा गद्दणी भूंईयां दा सोणा
ओ गद्दणी भूईंयां दा सोणा
नुआरी दे पल़ंगा जो आ
ओ! मेरिए बांकिए गद्दणी!
नुआरी दे पल़ंगा दा सौणा राजाजी असां जो नि सजदा
ओ असां जो नि गमदा
राणियां जो सजदा
भूंईयां दा सौणा सुहाणा राजा
ओ! मेरेया बांकेया राजेया।
छल़ी छल़ी राजा गद्णी जो पुच्छदा
गद्दणी जो पुच्छदा
कुदी दस्स लगदी बुरी
ओ! मेरिए बांकिए गद्दणी!
थोड़ी थोड़ी राजा छेलुआं भेडुआं दी लगदी
गद्दिदए दे नाएं लगदी छुरी बो
ओ! मेरेया हरिसिंघा राजेआ!
इक लख दिंदा गद्दणी दो लख दिंदा
पल़मा दी देणी बजीरी
ओ! मेरिए बांकिए गद्दणी!
लख नी लैणा राजेआ दो लख नी ओ लैणा
नी लैणी तेरी बजीरी
ओ! मेरेया हरिसिंघा राजेआ!

एक गद्दण का शृंगार

गद्दण (रूपांतर)

बाड़िया दे बणे राजा हेड़े जो चलेया
गद्दण तमासे जो आई ओ
चार सिपाही राजें दड़ बड़ भेजे
गद्दण बांकी चुकी डोल़ें पाई ओ
मेरेया बांकेया राजेया।

छोड़ छोड़ राजा मेरे सालुए दा लड़
मैं तां नार पराई ओ
मेरेया बांकेया राजेया।

भूईंयां दा सौणा गद्दणी छोड़ी छोड़ी देणा
पल़घां दे सोणे जो आ बो
मेरिए बांकिए गद्दणी।

पल़घां दा सौणा तुसां राजेयां जो बणदा
जी राणियां जो बणदा
भूईंयां दा सौणा असां जो
मेरेया बांकेया गद्दिया।
लूंहडे दा खाणा गद्दणी छोड़ी छोड़ी देणा
सूने दे थाल़ां च खाणा बो
मेरिए बांकिए गद्दणी।

थाल़ां दा खाणा राजेयां राणियां जो बणदा
लूंहडे च खाणा असां दा
मेरेया बांकेया राजेआ।

उन्नी दा चोल़ा गद्दणी छोड़ी छोड़ी देणा
रेशमी पोशाकां पा बो
मेरिए बांकिए गद्दणी।

रेशमी पोशाकां राजेया राणियां जो बणियां
उन्नी दी चोल़ा असां जो
मेरेया बांकेया राजेया।

इक दिन राजा गद्दणी छल़ी छल़ी पुच्छदा
गद्दी पिआरा कि मैं बो
मेरिए बांकिए गद्दणी।

थोड़ी थोड़ी ममता राजा तुसां दी बी लगदी
गद्दिए दे नाएं लगदी छुरी ओ
मेरेया बांकेया राजेया।

थोड़ी थोड़ी बुरी राजा छेलुआं दी लगदी
राजा भेड़ुआं दी लगदी
गद्दिए दे नाएं बजदी छुरी ओ
मेरेया हरिसिंघा राजेया।

महलां दे हेठ गद्दी भेडा जे चारे
मुरलिया रूणक सुणाई बो
मेरेया बांकेया गद्दिया।

गद्दण (रूपांतर)

लई के नगारे जो राजा हेड़े जो चलेया
लोक तमासे जो आए,जिया हो
मेरेया हरिसिंघा राजेया।

लौंगा दे बागें गद्दण बकरियां चारदी
राजे दिया नजरी पई, जिया हो
मेरिए हीरां गदरेटिए हो।

थोड़ी तां थोड़ी राजा साह्बां दी लगदी
गद्दिये दी बज्जी जांदी छुरी, जिया हो
मेरेया हरिसिंघा राजेया।

ओ छोड़ी तां देणा ओ गद्दणी प्हाड़ां दी हंडणा
कि तेरी सौह प्हाड़ां दा चलणा
पधरे गुलेर जो जाणा,जिया हो
मेरिए हीरां वो गदरेटिए।

भंवरे सी दाढ़ी वाला भुंकू

सुन्नी-भूंकू भरमौर क्षेत्र की वह हृदयस्पर्शी गाथा है जो दो संस्कृतियों के मिलन के साथ एक मायावी और करुण संसार की रचना करती है। गर्मियां होते ही बर्फीले जोत रास्ता खोलते हैं। भरमौर के गद्दी अपनी भेड़-बकरियां लेकर दुर्गम बर्फ भरे जोतों को लांघ लाहुल में प्रवेश करते हैं। लाहुल, जहां भोट लोग बसते हैं। भोट, जिन्हें 'भोटले' कहा जाता है, भिन्न वेशभूषा, भाषा और भिन्न संस्कृति के लोग हैं। किंतु गद्दियों के संपर्क में आने के कारण भिन्न भाषा-भाषा होते हुए भी एक दूसरे को करीब से समझते हैं। ऊंचे पर्वतों के एक ओर भोट तो दूसरी ओर गद्दी।

बर्फीले जोत लांघते रेवड़

फुलमो-रांझू की तरह सुन्नी-भूंकू गाथा है एक कल्पना लोक के आदर्श प्रेम की, जो जब यथार्थ की धरती पर उतरी तो ज़माने की भूल ने उसका अंत कर दिया।

कैसा था भूंकू.... छोटे कद का गठीला जवान जिसकी भंवरे-सी काली दाढ़ी थी। गीतकार ने उसका परिचय यूं दिया है-

छोटड़ा गदेटा मेरी भैण जी, काळी भौंर दाह्ड़ी है।

जब ये भंवरे-सी काली दाढ़ी वाला गद्दी गभरू सुन्नी के घर के आगे 'लाहुल में' गुजरता है तब-

ओ बाहर जइयो निकियो छुकयो, कुत्ते कस जो लगे हो।

भूंकू को गांव के कुत्ते भौंकते हैं। सुन्नी बच्चों को बाहर भेजती है कि देखो

कुत्ते किसे भौंक रहे हैं। बच्चे सुन्नी को बताते हैं कि बाहर भंवरे-सी दाढ़ी वाला गठीला जवान है।

सुन्नी बाहर आती है। आपस में बात होती है-

कठी तेरे घर ओ मितरा कठी जो चलूरा हो।

भट्टी टिकरी घर वो मण्हिए, लोहल़ा जो चलूरा हो।

तुम्हारा घर कहां है, कहां जा रहा है! मेरा घर भट्टी टिकरी में है, मैं लाहुल जा रहा हूं।

सुन्नी उसे भीतर बिठा लेती है। उसे हुक्का पिलाती है।

इसके बाद का किस्सा मायावी है। भूंकू छह मास तक सुन्नी के घर में रहता है। छह मास बाद जब वह बाहर निकलता है तो पूछता है-

कुण जिणी रित सुन्निए, कुण जिणा म्हीना है।

सुन्नी कहती है-

सैरकणी रित भूंकूआ, काति दा म्हीना है।

कार्तिक महीना आ लगा है, सैर आ गई है। भूंकू हैरान रह जाता है। मेरी भेड़-बकरियां कहां गईं, मेरी कंठी कुतिया कहां गई।

सुन्नी बताती है तुम्हारी भेड़-बकरियां तो भटियात पहुंच गई हैं, कंठी कुतिया अभी यहीं है।

भूंकू डर जाता है। कार्तिक आ लगा है। जोत में फिर बर्फ गिरेगी। वह घर कैसे जाएगा। सुन्नी कहती है तू डर मत। जोत लांघने के लिए अड़ोस-पड़ोस के व्यक्ति भेजूंगी, साथ में अपना भाई भेजूंगी। वे तुम्हें जोत पार करा देंगे।

सर्दियां बीतीं। पुनः बसंत आया। गद्दी लोग लाहौल जाने लगे। सुन्नी भूंकू के इंतजार में खड़ी हो जाती और आते हुए गद्दियों से भूंकू के बारे में पूछती। जब वह सबसे यही पूछने लगी तो एक दिन किसी मनचले गद्दी ने कह डाला-

होर ता मह्णू राजी बाजी भूंकू गद्दी मुआ हो।

और तो सभी ठीक-ठाक है। भूंकू गद्दी मर गया है। जब वह पूछती है कि किस दुःख से मरा तो उत्तर मिला वह तेरे वियोग में मर गया है।

बस, यह सुन सुन्नी की मृत्यु हो गई।

कुछ समय बाद भूंकू वहां पहुंच गया और सुन्नी के बारे में पूछने लगा। किसी ने बताया-

होर ता मह्णू राजी बाजी सुन्नी भोटली मुई हो।

और तो सब ठीक-ठाक है, सुन्नी भोटली मर चुकी है।

बस भूंकू भी वहीं ढेर हो गया।

गर्मियों में लाहुल घाटी जाते, जोत लांघते हर गद्दी भूंकू लगता है। क्या कोई सुन्नी अब भी उसे मिलती होगी !

सुन्नी भूंकू गाथा के कई रूपांतर मिलते हैं जिनमें से एक नीचे दिया जा रहा है।

सोना भोटल़ी

सुन्नी भूंकू का एक और रूपांतर 'सोना भोटल़ी' है। इस गीत में सुन्नी का नाम सोना है। भोट देश यानि लाहौल की वासी होने पर उसे भोटल़ी या भोटड़ी कहा जाता है। भूंकू को भौंकू भी कहा गया है। भूंकू का घर बड़ा भंगाल या भट्टी टिकरी में बताया गया है। कथा वही हैः भरमौर से एक गद्दी युवक भूंकू अपनी भेड़ बकरियों ले कर लाहौल के गोशाल गांव में जाता है। यहां उसकी भेंट सोना नाम की युवती से होती है। सोना भोटली उसे किसी बहाने से अपने घर ले जाती है। उसे चुरू गाय के घी में स्वादिष्ट व्यंजन खिलाती है। उसे वहां रहते हुए छह महीने

लाहुली युवती

बीत जाते हैं किंतु समय का पता नहीं चलता कैसे बीत गया! एक दिन उसे अपनी भेड़ बकरियों की याद आती है तो सोना से पूछता है कि यह कौन सा महीना है और कौन सी ऋतु है! सोना उसे बताती है कि यह कार्तिक का महीना आ लगा है। अंततः उसे वापिस जाना पड़ता है। दूसरी गर्मियों में जब सब पुहाल लाहौल से गुजरते हैं तो सोना उनसे भूंकू के बारे में पूछती है। कोई मनचला मजाक में बताता है कि भूंकू तो मर गया है। बस, सोना बेहोश हो गिर जाती है और अपने प्राण त्याग देती हैं। जब भूंकू वहां पहुंचता है और उसे सोना के मरने की ख़बर मिलती है। वह भी अपने प्राण त्याग देता है।

सोना ता भाटड़ी बलिए पाणिया रे गई
गुंशोरी चौंऊरे बलिए नौवां गद्दी आया।
सोना ता भोटड़ी बलिए पुछूणे लागी
क्या तेरा नांव बलिए क्या तेरा ग्राऊंए!
भूंकू मेरा नांव बलिए बीड़ भंगाल ग्राऊंए
भूंकू लागा पूछूणे बलिए क्या तेरा नांव
क्या तेरा ग्राऊंए!
सोना मेरा नांव बलिए बाड़ी गुशाणे ग्रांऊंए।
अंदर आईए भूंकू गद्दिया घाणे बूझी देंऊंले
मूं नी आणा सोना भोटड़ी सारा सूरे री बासे।
सारा सूरे री बासे चुली चौका देऊंले
सोना छैड़े किनरी बलिए भूंकू छैड़े नाचै।
भूंकू छैड़े किनरी बलिए सोना छैड़े नाचै
भूंकू तां आए मौज बैणेरा
पता नीए वास्त बरिएशैरे काटता जीयो।
ताता ताती खिचड़ी ए भूंकू जो दिती ओ
चूरिए घीऊए चोरी कारी दिती जीयो।
खांदे पींदे प्रेमा करांदे जीयो
प्रेमा करदे कई महीने बीते जीयो।
नई रीति रे चीड़ चवाड़े वाशुदे जीयो
भूंकू गद्दी री निद्रा जागी जीयो।
सांगा साथी रे मिलणेरी लागी जियो
भूंकू पूछा कुण ता रित ऐ कुण महीना जीयो।
केठी मेरी भेड़ बकरी तिना हेरदा साथी जीयो
त्रिण चुगदी भेड़ा बकरी तिना हेरदा साथी जीयो।

सोना छोडी तिंदि पारे गैया जीयो
सोना बोलदी आइए भूंकू गद्दी जीयो।
हाऊं तां त्रड़ी तेरी आगी जीयो
नोऊएं बारणै सोना पूछणे गई जीयो।
गद्दी भाइयां सुखसांता देणा जीयो
होरां गद्दी राजीबाजी भूंकू गद्दी मुआ जीयो।
सोना भोटड़ी चेता गवाई जीयो
चेता गवाई फेरी मरी गई जीयो।
आऊं तो आया ए कागे री वैखे जीयो।
माऊं तां भेडा बकरी घारे छूटी गई जीयो।
भूंकू गद्दी ए पुछणे लागा जीयो
होर तां राजीबाजी सोना भेटड़ी मूई जीयो।
भूंकू ता गद्दी चेता गवाई जीयो
चेता गवाई फेरी मरी गई जीयो।
सतयुगे री माणुए सत युगे गेई जीयो
हीरा जन्मेरी हीरा जन्मा गेई जीयो।

(एक प्रचलित गाने में अन्य रूपांतर)

कठी तेरे घर बो मित्तरा,
कठी जो चल्लू रा ओ।
भटी टिकरी घर बो गदणी,
खरचा जो चल्लू रा ओ।
टुटी मेरे टिकणू री डोर,
बैरिया सम्हाले ओ।
भाले मिंजो भाले बो गदणी,
भाले जिंदे मिंजो भाले ओ।
छिकणू री डोर नी टुटी,
टुटी दिले री परीतां ओ।
कोढ़िया बो सजणा तैं,
हिक बो जाले लाई ओ।
हऊं बो कीहां मुझां तेरे,
हिकडू रे रोगा ओ।
बैरिया बो सजणा तैं,
बड़े बो दुख जाली ओ।

कोढ़िया बो सजणा तू,
भाले बो मिंजो भाले ओ।

हुण बो कतांही जो
हुण बो कतांही जो नह्स्दा धोड़िया
बापूएं लाड़ें तेरे बो लाए।
कदी बो कुआरी बाबुल दे घरैं
अध बो ब्याहियां कद भला छोड़ंदा।

रिढ़ियां कलासां धूडू भला बसदा
मिजों बला बलदा गौरां न आए।
हुण बो कतांही जो नह्सदा धोड़िया
अध बो ब्याहियां कद भला छोड़ंदा।

रीढ़ियां रीढ़ियां तां गौरां नह्सदी
नाले तां खोह्ले धूडू तोपंदा
हुण बो कतांही जो नह्स्दा धोड़िया
अध बो ब्याहियां कद भला छोड़ंदा।

गौरां बला गौरां हासा बो लांदा
गौरां बला ना बो सुणदी
हुण बो कतांही जो नह्स्दा धोड़िया
अध बो ब्याहियां कद भला छोड़ंदा।

भेड़ों का रेवड़

लोक नाट्य

हरण या हरणातर

हरण लोक नाट्य का आयोजन भरमौर में होली के दिन होता है। होली यहां रगों का त्यौहार नहीं है, 'हियूंद' या सर्दी को विदाई का त्यौहार है। होली के दिन सायंकाल एक बड़ा 'घियाना' जलाया जाता है। बहुत सी लकड़ियां इकट्ठी कर जलाई जाती हैं और एक दूसरे से बड़ा घियाना जलाने का प्रयास किया जाता है। भरमौर की पहाड़ी आग की रोशनी से चमक उठती है। सर्दी की लंबी ऋतु से तंग आकर लोग चिल्लाते हैं।

हो ! हो ! हो ! हियूंद गो बसंद आ-सत फटा जुहेरी खांदा गो।

आपस में गालियां भी बकी जाती हैं। सारी पहाड़ियां शोर-शराबे से गूंज उठती हैं। इसके बाद लोग देवता के मंदिर के पास जाकर हरण बांधना आरंभ करते हैं। लोग अपने-अपने अभियान के अनुसार, रुचि के अनुरूप स्वांग रचते हैं।

हरण

मुख्य स्वांग हरण का है। किसी पशु का चमड़ा शरीर में लपेटकर सिर में सींग लगाए जाते हैं। शरीर में डोरा बांध लिया जाता है। हरण या हरिण बना व्यक्ति चौपाए की तरह चलता है। हरण जब चलता है तो कई कूदकर उस पर चढ़ जाते हैं।

खप्पर

खप्पर मुखौटे को कहा जाता है। खप्पर मुंह पर खप्पर या मुखौटा लगाते हैं। चोला-डोरा तथा सिर पर पगड़ी पहनी जाती है। खप्परों की संख्या दो, तीन, चार या अधिक भी हो सकती है। हाथ में डंडा लिए हुए खप्पर नाचते हैं। और हंसाने का उपक्रम करते हैं।

चंदौली

चंदौली या चंद्रावली भी आदमी ही बनता है। लुआंचड़ी, डोरा, आभूषण तथा चूड़ीदार पाजामा या सलवार पहने चंदौली तैयार होती है। चंदौली की संख्या भी खप्पर के बराबर होती है क्योंकि चंदौली खप्पर साथ नृत्य करती है।

गद्दी-गद्दण

गद्दी चोला-डोरा तथा सिर पर नोकदार टोपी पहनता है। सफेद दाढ़ी-मूंछ लगाता है। हाथ में त्रिशूल लिए यह शिव का चेला भी बन जाता है। वह कभी कभी चेला बनकर कांपने का अभिनय भी करता है। यह गद्दी ही 'रौलु' या विदूषक का काम भी करता है। एक व्यक्ति गद्दण की वेशभूषा पहन गद्दण बनता है। गद्दी-गद्दण उपस्थित जनसमूह को हंसाने का प्रयास करते हैं।

साहब

एक व्यक्ति सिर पर टोप पहने मुंह में आटा मलकर साहब बनता है। इन सभी व्यक्तियों का पूरा टोला बाजदारों के पीछे चलता है। बाजदारों में ढोल, शहनाई वाले आगे-आगे चलते हुए देवता का जयकारा बोलते हुए घर-घर जाते हैं। हर घर के आगे वे गाते हैं-

हरण आया हरणोटा राजे रामेरी प्रौल़ी।
हरना दे सिंगड़ु सहोणे, जिह्यां मोती रे दाणे।।
डंक बजंदे डकडोंस राजे रामेरी प्रौल़ी।
हरन आया हरनोटा, मंगदा बकरोटा।।

पूरी रात घर-घर जाकर मांगने के बाद प्रातः हरण का विसर्जन उसी मंदिर में होता है, जहां से चला था। घरों से एकत्रित अन्न धन से एक निश्चित दिन 'फगोल़' पर सहभोज किया जाता है।

कहीं-कहीं हरणात्र होली के साथ आठ-आठ दिन चला रहता है। यदि यह नाट्य अधिक दिन चले तो झांकी कहा जाता है। झांकी में भी रोज वही स्वांग निकलते हैं जो हरण में होते हैं।

बांढा

भरमौर में बांढा असूज में मनाया जाता है। इस मास में गद्दी अपने परिवार सहित प्रवास की तैयारी में होते हैं। पुराने समय में तो प्रवास की यात्रा लंबी होती थी। आने वाले बच्चों तथा मवेशियों सहित कई दिन यात्रा करनी पड़ती थी। अतः जाने से पूर्व सगे संबंधियों से मिलना-जुलना होता था।

असूज की प्रथम तिथि या सैर से ही यह उत्सव आरंभ हो जाता है। उत्सव के दिन एक चील या देवदार का पेड़ काटा जाता है। किंतु सावधानी यह रखी जाती है कि वृक्ष का सिरा या कोई टहनी न टूटे। यदि सिरा टूट जाए तो दूसरा वृक्ष काटा

जाता है। इस तरह रियासती समय में नौ वृक्ष तक काटने की स्वीकृति थी।

वृक्ष को सावधानी से काटने के बाद इसे रस्से की भांति खींचने की प्रतियोगिता होती है। खींचने के लिए एक दल एक गांव का और दूसरा दूसरे गांव का होता है।

वृक्ष खींचने की प्रतियोगिता के बाद मंदिर के प्रांगण में बांढे का आयोजन किया जाता है। पुराने समय में यह आयोजन लगातार नौ दिन तक होता था।

रात को मंदिर के प्रांगण में बड़ा घियाना लगाया जाता है। घियाने के साथ हर घर से प्रकाश के लिए 'जंगणी' का गट्ठा लाया जाता है। 'जंगणी' चील की लकड़ी होती है जिसमें बहुत-सा बिरोजा होता है और तेजी से जलती हुई प्रकाश फैलाती है।

बांढे में हरणातर की भांति अलग-अलग स्वांग किए जाते हैं। गद्दी-गद्दण, चंदौली आदि के स्वांग दिखाए जाते हैं। इस नाट्य में कोई संवाद या स्वांग निश्चित नहीं है। अवसर के अनुसार और अभिनेता की वाक्पटुता के अनुसार संवाद तुरंत बोलकर मनोरंजन किया जाता है।

बांढा अब एक रात होता है, पहले नौ दिन तक मनाया जाता था। चणहौता में प्रथम असूज के बाद क्वार्सी में बांढा होता है। शुटकर तथा दयोल गांवों में भी बांढा किया जाता है।

लोक नृत्य

चंबा नृत्य और संगीत के लिए प्रसिद्ध है। मिंजर मेले के अवसर पर चौगान में चारों ओर से नाच नाचा जाता है। स्थानीय और गद्दी लोग अपनी मस्ती और आनंद के लिए नाचते हैं। उनका नाच भीतर से प्रस्फुटित होता है अतः यह बहुत ही सहज और प्राकृतिक है। धीमी गति से जब गद्दी अपने चोले-डोरे कलगी युक्त टोपे में नाचता है तो पर्वत झूम उठते हैं। धीमी गति से नाचते हुए गद्दी बहुत देर तक नृत्य करते रहते हैं।

गद्दी समुदाय में पुरुष तथा महिलाएं अलग-अलग नाचते हैं। आजकल प्रदर्शन के लिए किए जाने वाले नृत्यों में पुरुष महिला एक साथ भी नृत्य करते हैं किंतु मूलतः यह नृत्य पुरुष तथा महिलाओं द्वारा अलग-अलग नाचे जाते हैं।

डंडारस

डंडारस नृत्य गद्दी नृत्य परंपरा का एक अनूठा उदाहरण है। यह केवल पुरुषों द्वारा नाचा जाता है।

यह नृत्य खुले प्रांगण में किया जाता है। अवसर कोई भी हो, डंडारस अवश्य नाचा जाएगा। चाहे जातरा हो, विवाह हो या अन्य कोई पर्व, डंडारस नृत्य अवश्य होता है। बजंतरी या बाजदार प्रांगण में एक ओर बैठ जाता है। ढोल, नगारा, शहनाई बज उठती है। कभी-कभी गाना भी गाया जाता है। कभी नर्तक भी साथ-साथ गाते हैं।

नृत्य के प्रांगण को 'पिढ़' कहा जाता है। जिस प्रकार कुश्ती के अखाड़े को भी 'पिढ़' कहते हैं। पिढ़ में प्रवेश के लिए परंपरागत वेशभूषा का होना आव यक है। सफेद चोला, काला डोरा, सफेद चूड़ीदार पायजामा, कंधे पर गुलाबी गुलेबंद, सिर पर कलगी युक्त टोपा, गले में चांदी की मालाएं, हाथों में कंगन। इस वेशभूषा के साथ कई लोग एक गोल दायरे में नृत्य आरंभ करते हैं धीमे-धीमे। भरमौर में नर्तक पगड़ी पहनते हैं तो छतराड़ी में नोकदार टोपी।

एक दायरे में वाद्यों की धुन पर मंद गति का यह नृत्य नगाड़े की गति के साथ धीमे-धीमे गति पकड़ता है। बीच-बीच में नर्तक भी गाते हैं और सींऽ की ध्वनि निकालते हैं। गति बढ़ने के साथ चरम सीमा पर नृत्य पहुंचता है। फिर धीरे-धीरे नर्तक दायरे से हटते जाते हैं और अंत में एक ही व्यक्ति रह जाता है। एक नृत्य इतना लंबा चलता है कि वह पूरे उत्सव या जातरा के लिए पर्याप्त होता है।

घुरैही

घुरैही महिलाओं का नृत्य है। इस अवसर पर महिलाएं एक गोल दायरा बनाकर नाचती हैं। दो-तीन महिलाएं घुरैही गीत गाती हैं, शेष उसे दोहराती हैं। ये गीत धार्मिक, प्रेम-विरह के हो सकते हैं। नृत्य के साथ-साथ गायन भी चलता है। अपनी परंपरागत वेशभूषा लुआंचड़ी, डोरा, सिर पर चक, गले में मालाएं डाले हुए महिलाएं नाचती हैं। डंडारस की भांति यह नृत्य भी घंटों चला रहता है। इस नृत्य में युवतियां तथा बूढ़ी औरतें सभी नाचती हैं। इस नृत्य में कोई वाद्य नहीं बजाया जाता। भरमौर के प्रवासी क्षेत्र में इस नृत्य को 'डंगी' कहा जाता है।

नुआला के समय नृत्य

नुआला उत्सव के समय अंचली गाई जाती है जिस में 'बंदे' या गायक बारी-बारी से गाते हैं। दो गाते हैं तो दो उसे बाद में दोहराते हैं। वाद्य यंत्रों के साथ गाई जाने वाली अंचली में रामायण तथा शिवीण (शिव गाथा) गाई जाती है। इस गायन के समय एक या दो-दो व्यक्ति उठकर नाचना आरंभ कर देते हैं। नाचते हुए वे तरह-तरह की मुद्राएं बनाते हैं। इस नृत्य में कोई वेशभूषा की आवश्यकता नहीं, जो जैसे बैठा है, एकाएक उठकर नाचने लगता है।

गिद्धा नृत्य

कांगड़ा की भांति गिद्धा नृत्य भी इस क्षेत्र में प्रचलित हुआ है। अपनी पारंपरिक वेशभूषा तथा पारंपरिक रंग से गिद्धा नाचा जाता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

चंबा राज्य : कुछ तथ्य

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग (उत्तरी वृत्त) के अधीक्षक के नाते जे.पी.एच. वोगल ने तत्कालीन राजा भूरिसिंह के सहयोग से सन् 1902 में 1908 तक चंबा की यात्रा कर एक सौ तीस शिलालेख ढूंढ़ निकाले।

वोगल ने अपनी भूमिका में चंबा को तीन-चौथाई सदी पहले तक 'अज्ञात' और अन्वेषित माना है। राजा भूरिसिंह को समर्पित वोगल द्वारा लिखित भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा सन् 1911 में प्रकाशित 'एंटीक्वीटीज़ ऑफ चंबा स्टेट' न्यू इंपीरियल सीरीज़ खंड 36 है जो पुरातात्त्विक दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है जिसे आज तक एक मानक अध्ययन के रूप में उद्धृत किया जाता है।

वोगल द्वारा सन् 1911 में चंबा को तीन चौथाई सदी पहले तक 'अज्ञात' कहना इस दृष्टि में तर्कसंगत है कि गुलाम देश के गुलाम इलाके अपनी अद्वितीय पुरा संपदा के होते हुए भी अजाने रहे क्योंकि कोई उन्हें सामने नहीं ला सका।

हमने अपने को विदेशियों की आंख से देखा है। उन्होंने कहा कि हमारी सभ्यता अतिप्राचीन है, तभी हमें अहसास हुआ। ऐसी स्थिति में हम वोगल जैसे विद्वानों पर यह कटाक्ष नहीं कर सकते कि यूरोपीय यात्रियों के 'उल्लेख' से पूर्व चंबा जैसे ऐतिहासिक स्थान था ही नहीं।

वोगल कहते हैं कि इस क्षेत्र का सबसे पहले उल्लेख यूरोपीय यात्री जॉर्ज फॉर्स्टर ने किया जिन्होंने 1783 में पंजाब हिल्ज़ की यात्रा के समय नूरपुर, बसोहली, जम्मू होते हुए चंबा की पश्चिमी सीमा को मात्र छुआ था। इनके बाद विलियम मूरक्राफ्ट ने जुलाई 1820 में कांगड़ा यात्रा के दौरान रावी के बारे में लिखा जो सही नहीं था क्योंकि वे स्वयं चंबा नहीं आ पाए।

वास्तव में चंबा आने वाले प्रथम यूरोपियन विगने थे जो फरवरी 1839 में चंबा आए। इन्होंने राजधानी चंबा का ही वर्णन किया है, राज्य के अंदरूनी भागों में ये नहीं गए। चंबा की पुरातात्त्विक संपदा को अलेक्जेंडर कनिंघम ने ही सर्वप्रथम सामने लाया जो 1839 में ऊपरी रावी घाटी तक आए और पहली बार पुरातन राजधानी भरमौर और उसके मंदिरों का वर्णन किया।

पश्चिमी हिमालय में स्थित चंबा राज्य तीन पर्वत शृंखलाओं में विभक्त है। तीस से साठ मील लंबी ये शृंखलाएं एक-दूसरे के समानांतर स्थित हैं। बाहरी शृंखला धौलाधार है जो 15,000 से 18,000 फुट तक ऊंची हैं। इसमें 8,000 से 15,000 तक ऊंचे दर्रे हैं जिसमें से गद्दी लोग आते-जाते हैं। यह चंबा को दो भागों में विभक्त करती है। तीसरी शृंखला जंस्कर है जो 18,000 से 20,000 फुट तक है। भीतरी हिमालय की यह शृंखला उत्तर-पश्चिम दिशा में चलती हुई लद्दाख को लाहुल-स्पिति से अलग करती है और चंबा-लाहुल को छूती है। पांगी घाटी से भी ऊंचाई वाली ये शृंखला स्थायी ग्लेशियर लिए हुए है।

चंबा राज्य की स्थिति के बारे में वोगल तथा चंबा गैजेटियर में दिए अंश कुछ भिन्नता लिए हुए हैं। चंबा गैजेटियर में चंबा राज्य उत्तर में 32^0 10' तथा 33^0 13' तक उत्तर में 75^0 45' तथा 71^0 31' में स्थित बताया गया है। वोगल तथा गैजेटियर दोनों में ही इसका क्षेत्रफल 3,216 वर्गमील माना है। ताजा सेटलमेंट के अनुसार (चंबा गैजेटियर : 1963) क्षेत्रफल 2,647 वर्गमील है। 1961 की जनगणना में कुल जनसंख्या 2,10,579 थी, वोगल के समय (1911) 1,27,834 थी। 1991 की जनगणना के अनुसार चंबा की जनसंख्या 3,93,286 है। 2001 की जनगणना के अनुसार 4,60,887 है जिसमें 2,35,218 पुरुष तथा 2,52,669 महिलाएं हैं। क्षेत्रफल 6,528 वर्ग किलोमीटर है।

चंबा राज्य की पांच बजारतों में से भरमौर या गद्दियों का क्षेत्र गधेरन मुख्य और केंद्रीय वजारत रही है। तीन वजारतें रावी घाटी में हैं, चौथी सीमांत क्षेत्र व्यास घाटी में पांचवीं चंद्रभागा में।

भरमौर वजारत पुरातन राजधानी भरमौर के नाम पर है जो बुड़ढल नदी के बाएं किनारे पर स्थित है। घाटी का निचला क्षेत्र भरमौर में लगभग दसवीं शताब्दी में जोड़ा गया। भरमौर के अतिरिक्त चंबा और चुराह वजारत रावी घाटी में आती है।

भरमौर मंदिर परिसर

हाथीधार और धौलाधार के बीच व्यास घाटी में भटियात का क्षेत्र है। यह क्षेत्र बहुत उपजाऊ और घनी आबादी वाला है।

चंद्रभागा घाटी में पांगी और जंस्कर शृंखलाओं के बीच लगभग पैंतीस वर्गमील का क्षेत्र चंद्रभागा के साथ-साथ लाहुल की ओर थरोट नाला और जम्मू की ओर संसारी नाला तक चलता है। इस क्षेत्र को जंस्कर शृंखला दो भागों में बांटती है। लगभग 21,000 फुट ऊंची शृंखलाएं दक्षिण-पश्चिम में सेचू और मियाड़ नाले के बीच चलती हुई तिंदी तक जाती हैं। उत्तर-पश्चिम में रौहली से गनौर नाले तक पांगी है, दक्षिण-पूर्व में रौहली में थरोट तक चंबा-लाहुल है। चंद्रभागा वजारत में पांगी और चंबा-लाहुल आते हैं।

राहुल जी ने लिखा है-

1948 ई. में हिमाचल प्रदेश में विलीन चंबा रियासत 32^0, $11^0$30'-33^0 13.86' उत्तरी अक्षांश और $75^0$49' 0-$77^0$3.30' देशांतर में अवस्थित थी, जो अब चंबा जिले के नाम से मशहूर है। इसकी सीमाएं पश्चिमोत्तर और पश्चिम में जम्मू से, उत्तर-पूर्व और पूर्व से लद्दाख, कांगड़े के लाहुल और बड़ा-बनगाहल से, दक्षिण और दक्षिण-पूर्व में कांगड़ा और गुरदासपुर के जिलों में मिलती हैं। इसका क्षेत्रफल 3,135 वर्गमील, और आबादी 1901 ई. में 1,27,834, 1951 में 1,76,050 थी। चंबा नगर रावी नदी के दाहिने किनारे पर डलहौजी से 18 मील पर अवस्थित है। रावी शाहपुर में पहाड़ों से नीचे उतरती है, जो यहां से 50 मील पर अवस्थित है। यह जिला दक्षिण-पश्चिम से पूर्व-उत्तर को 70 मील लंबा और दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम में प्रायः 50 मील चौड़ा है। इसके भीतर रावी-उपत्यका एवं व्यास-उपत्यका और चनाब-उपत्यका के कुछ भाग हैं। रावी-उपत्यका में चंबा का इलाका पड़ता है, और चनाब (चंद्रभागा) उपत्यका में पांगी और चंबा का लाहुल। सारा जिला दो हज़ार से 21,000 फुट ऊंचे पहाड़ों के भीतर है, और यहां से कोई-कोई गांव 10,000 फुट की ऊंचाई पर बसे हैं। हाथीधार और धौलाधार के बीच का चंबा का अधिक भाग व्यास-उपत्यका में पड़ता है। इसे और निम्न रावी-उपत्यका के कुछ थोड़े-से भाग को मिलाकर चंबा की सबसे उर्वर तथा घनी आबादी वाली भटियात बजारत (तहसील) है। इसका दक्षिणी भाग बलुवा पत्थर का है, अर्थात् यहां के पर्वत शिवालिक के अंग हैं, जिसका सबूत वहां के वनस्पति भी देते है। यहां बांस, पीपल, आम जैसे वृक्ष होते हैं। साल में जौ-गेहूं और चावल-मक्की की दो फसलें होती हैं। धौलाधार और पांगी श्रेणी के बीच में उन ऊंचे पहाड़ों से घिरी रावी की उपत्यका है, जिनसे कितनी ही नदियां निकलकर रावी में मिलती हैं। इनमें सबसे बड़ी सिउल नदी है, जो चंबा-उपत्यका के उत्तर-पश्चिमी भाग के पानी को बहाती है।

चंबा पांच वजारतों में बंटी हुई है, जिनमें से तीन की अपनी प्राकृतिक सीमाएं है। चंबा (सदर-वजारत) तुंदा पर्वतश्रेणी और चिरचिंद नाला से धौलाधार तक फैली हुई है।

कुछ और तथ्य

त्रिगर्त और कुल्लूत के बाद चंबा पुरातन राज्यों में आता है। राज्य की नींव 550 या 600 ई. में पड़ी तथापि इससे पूर्व भी यह राज्य अस्तिव में रहा होगा। चंबा राज्य के मूल वासी गद्दी भेड़पालक हैं जो शिव के उपासक हैं। यह परंपरा इन्हें पौराणिक औदुंबर गण से जोड़ती है जो भेड़ पालक थे। चंबा के साथ लगते पठानकोट में औदुंबरों की मुद्राएं भी मिली हैं। इन मुद्राओं में एक ओर मनुष्य की आकृति है जो बाघ का चमड़ा ओढ़े हैं। इन पर 'देवस् राजो धर घोषस औदुंबरिस' खरो ष्ठी में लिखा होने के साथ वृक्ष तथा त्रिशूल भी अंकित हैं। इसी प्रकार ताम्बे की मुद्राओं

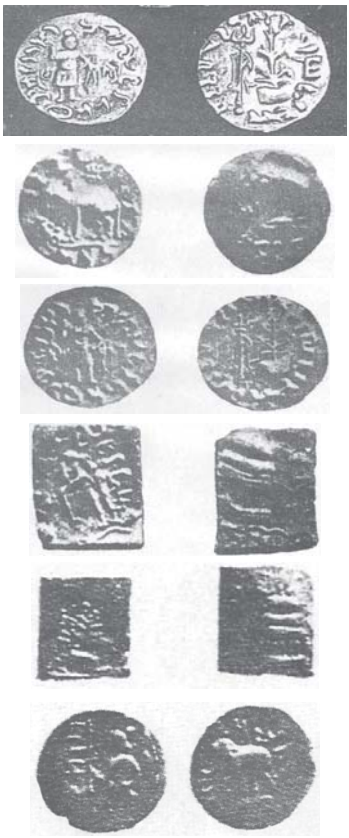

औदुंबर मुद्रा

में भी वृक्ष, हाथी और त्रिशूल के चिह्न अंकित हैं। ये मुद्राएं मैदानी भागों में मिली हैं। ऊन आदि स्रोत चंबा का उपरि भाग रहा है जहां से ये वस्तुएं पठानकोट व नूरपुर आदि में लाई जाती थीं।

चंबा जालंधर का भाग भी रहा। चीनी यात्री ह्यूनसांग(630ई.) ने जालंधर की लंबाई 1,000 ली (167 मील) तथा चौड़ाई 800 ली (133 मील) बताई है जिससे स्पष्ट होता है कि चंबा से ले कर मंडी सुकेत तक जालंधर में ही रहे होंगे। चंबा, मौर्य और कुषाण व गुप्त राजाओं का करद रहा होगा।

चंबा के इतिहास में वंशावलियों के अतिरिक्त पुरालेख, शिलालेख, ताम्रपत्र, पट्टे बहुतायत हैं। ये सभी मुगल आक्रमणों से भी बचे रहे। एलेक्जेंडर कनिंघम ने सर्वप्रथम इन पुरावशेष की ओर ध्यान दिलाया। लगभग 130 शिलालेखों में में पचास मुगलकाल के हैं। अस्सी मुगलकाल से पहले के हैं। सबसे पुराना शिलालेख सातवीं शताब्दी का है। कुछ शारदा, टाकरी प भोटी में हैं। शिलालेखों के साथ मूर्तियों पर लेख, ताम्रपत्र और पट्टे हैं।

मूर्तियों पर लेखों की शृंखला में राजा मेरुवर्मन के समय (700) का लेख भरमौर में है। पनघट शिलाओं के लेख भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ये लेख राणाओं और ठाकुरों द्वारा लिखवाए गए। वरुण देवता को समर्पित ये लेख पूर्वजों की स्मृति में लिखवाए गए। चंबा में एक सौ पचास से ऊपर ताम्रपत्र मिलते हैं जिनमें पांच मुगल काल से पहले के हैं।

ताम्रपत्रों में सब से पुराना साहिल वर्मन के पुत्र युगाकर वर्मन का है जिसने चंबा को राजधानी बनाया।

चंबा के मूलवासी कौन रहे होंगे, यह ज्ञात नहीं है। कहा जाता है ये लोग मैदानों से आए। कोली, हाली, सिप्पी, डूमणा, रिहाड़ा, दरेई, लोहार, बरवाल, धौगरी पूरी जनसंख्या का चौथाई भाग रहे हैं। कनिंघम का मत है कि पश्चिमी हिमालय कोल समुदाय का केंद्र रहा और ये लोग उसी समुदाय के हैं। यह अनार्य थे। किंतु बाद में आर्य अनार्य का भेद करना कठिन हो गया। भरमौर क्षेत्र आरंभ में केवल गद्दी जनजाति का रहा जो राज्य विस्तार और राजधानी चंबा बनने पर नीचे भी उतर आए।

कथा प्रथम शासक की

वंशावली में कथा है : 'बहुत वर्ष बीतने पर योगसिद्ध राजा मरू ने एक राजकन्या से विवाह किया और उसने सद्गुण संपन्न पुत्रों को जन्म दिया। मरु ने उनमें से एक पुत्र को कलाप ग्राम में स्थापित कर स्वयं दो पुत्रों सहित वहां से निकल पड़ा और एक को हिमालय पर्वत में स्थापित किया। तब अपने बड़े पुत्र जयस्तंभ

के साथ कश्मीर पहुंच कर उसके लिए वर्मपुर की स्थापना की और उसे वहां के राजा पद से अभिसिक्त किया। वह वहां योगसिद्धि में लग गया। जयस्तंभ का पुत्र जलस्तंभ और उसका पुत्र महास्तंभ हुआ।' यह घटना 540-550 ई. की मानी जाती है। ब्रह्माणी देवी के नाम पर इस स्थान का नाम ब्रह्मुपर रखा गया जो वर्तमान में भरमौर है।

वंशावली में शासक का नाम आदि वर्मन है। आदि वर्मन या आदित्य वर्मन (620ई.) ने अपने नाम के साथ वर्मन उपनाम लगाया। भरमौर के लेखों में आदित्यवर्मन का नाम दो बार आया है। ये शिलालेख उसके प्रपौत्र मेरु वर्मन ने खुदवाए। आदित्य वर्मन के बाद बाला वर्मन (640ई.), दिवाकर वर्मन (660ई.), मेरु वर्मन (680ई.) आते हैं।

मेरु वर्मन एक योग्य शासक हुआ जिसने राज्य की सीमाओं को बढ़ाया। इस ने छतराड़ी में शक्ति देवी का मंदिर बनवाया। देवी की मूर्ति में एक लेख है जिस पर लिखा है :

'विशुद्ध कुल प्रसूतों में अग्रणी श्री देव वर्मन की कीर्ति सर्वत्र फैली थी। उनके पुत्र श्री मेरु वर्मन सर्वगुणसंपन्न तथा पृथ्वी पर प्रख्यात थे। उन्होंने अपने माता पिता की तृप्ति के लिए तथा अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के बाद अपनी भक्ति को मां शक्ति के चरणों में प्रकट करने के लिए, जिनकी कृपा से उन्हें विजय मिली, गुग्गा कार्मिक के द्वारा माता की मूर्ति का निर्माण करवाया।' गूं कोठी में एक शिलालेख है जिसमें मेरु वर्मन के सामंत आषाढ़ देव द्वारा शिवपुरी के मध्य षंकलीश मंदिर बनवाए जाने का उल्लेख है। आषाढ़ देव मेरु वर्मन का सांमत था अतः यह राज्य अब रावी नदी की घाटी तक फैल चुका था। मेरु वर्मन ने भरमौर में मणिमहेश, लखना देवी, गणेश तथा नृसिंह मंदिर बनवाए। इन मूर्तियों में भी लेख हैं। लखना या लक्षणा देवी मूर्ति के आधार में लेख के अनुसार इसे आदित्य वर्म देव के प्रपौत्र बल वर्म देव के पौत्र तथा दिवाकर वर्म देव के पुत्र मेरु वर्मा ने पुण्य वृद्धि हेतु बनवाया। इसी प्रकार नंदी में इसे मेरु वर्मन द्वारा बनवाए जाने का उल्लेख है। इन मंदिरों को राजा द्वारा भूमि भी दी गई।

मेरु वर्मन के बाद अजय वर्मन, लक्ष्मी वर्मन राजा हुए।

कथा मूषक वर्मन की

लक्ष्मी वर्मन के समय राज्य में हैजा फैला जिससे बहुत से लोग मर गए। प्रजा डर के मारे राज्य छोड भाग गई। ऐसे संकट के समय में उत्तर पूर्व की ओर 'किरों' ने आकम्रण कर दिया। 'किर या कीर' तिब्बती, यारकंदी या पौराणिक किरात रहे होंगे। राजतरंगिणी और बृहतसंहिता ने इन्हें कश्मीर का वासी कहा है। ब्रह्मपुर

पर आक्रमण होने पर मेरु वर्मन के समय अधीन हुआ कुल्लू भी स्वतंत्र हो गया।

लक्ष्मी वर्मन की मृत्य के समय रानी गर्भवती थी। वजीर तथा पुरोहित रानी को पालकी में उठा कर कांगड़ा की ओर ले गए। ऊपरी रावी घाटी में एक स्थान पर पहुंचने पर रानी को प्रसव पीड़ा हुई। पालकी को एक गुफा में ले जाया गया जहां रानी ने पुत्र को जन्म दिया। शत्रुओं के भय से रानी ने शिशु को गुफा में छोड़ दिया। जब वजीर और पुरोहित गुफा में गए तो देखा कि शिशु को चूहों ने घेर रखा था। वे शिशु को ले आए और कांगड़ा में एक ब्राह्मण के घर वह रहने लगा।

एक दिन ब्राह्मण के घर आटा गिर गया। आटे पर बालक के पैर पड़े तो पैरों के निशान से ब्राह्मण ने जान लिया कि यह तो कोई राजकुमार है। ब्राह्मण के पूछने पर रानी ने भी सच-सच बता दिया। ब्राह्मण रानी तथा राजकुमार को सुकेत ले आया। सुकेत के राजा ने उनका स्वागत किया और अपने महल में रखा। राजकुमार को वहीं शिक्षा दीक्षा दी गई। युवा होने पर उसका विवाह अपनी कन्या से कर दिया और पांगणा का परगना दहेज में दिया। उस सेना भी दी गई जिससे उसने ब्रह्मपुर जा कर किरों को खदेड़ दिया और पुनः अपने राज्य पर अधिकार कर लिया।

मूषकों से रक्षा किए जाने के कारण इस राजा का नाम मूषक वर्मन हुआ। इस घटना के बाद राज्य में मूषकों को मारने की मनाही हो गई। मूषक वर्मन के बाद हंस वर्मन, सार वर्मन, सेन वर्मन, सज्जन वर्मन, मृत्यंजय वर्मन राजा हुए।

चंबा के इतिहास में साहिल वर्मन एक प्रतापी राजा हुआ। साहिल वर्मन (920-940) ने रावी की निचली घाटी तक राज्य विस्तार किया। ब्रह्मपुर से राजधानी को चंपा में स्थानांतरित किया। इस राजा के समय कुल्लू के साथ बारह वर्ष तक युद्ध चला और अंत में संधि हुई।

महादानी बलभद्र वर्मन

साहिल वर्मन के बाद बलभद्र वर्मन (1589) तक बीस शासक हुए जिन्होंने अपने नाम के साथ 'वर्मन' लगाया। राजा बलभद्र वर्मन बहुत धार्मिक, उदार और दानी था। वह रोज़ भूमि दान करता था। ब्राह्मणों को दान किए गए 42 ताम्रपत्र चंबा तथा कांगड़ा में मिलते हैं। उसे राजा बलि और कर्ण कहा जाता था। जब भी कोई जाता, वह अपने पास पड़ी कोई भी वस्तु दान कर देता। राजा ने लक्ष्मीनारायण मंदिर को भूमि तथा जवाहरात दान किए जो अभी भी मंदिर में विद्यमान हैं। एक सोने की डिबिया में एक मूर्ति जिस पर वि. 1675 (1619) अंकित है, आज भी मंदिर में है। इस तरह रोज दान करते करते राजकोष खाली हो गया। राजा को आगाह भी किया गया किंतु वह नाराज हो गया। इस समय तक राजा का पुत्र जनार्दन क्यस्क हो गया था अतः अधिकारियों ने उसे इस संकट के बारे में सचेत किया।

धण

जनार्दन ने राजा को दूसरी जगह भेज दिया जहां घर व ज़मीन दी। वहां भी वह दान करता रहा और सारी भूमि दान में दे दी। उसके पास मात्र एक घर ही रह गया जिसमें वह रहता था। बिना अन्न जल ग्रहण किए दान देने की प्रवृत्ति में राजा एक एक फुट के हिसाब से घर का दान करने लगा। इस तरह घर का बरांडा व कमरा भी दान में चला गया। जब पूरा घर दान में चला गया तो वह बाहर खुले में रहने लगा और अन्न जल भी त्याग दिया। जब यह समाचार पुत्र जनार्दन को मिला तो उसने और जागीर दी।

बलभद्र वर्मन के बाद जनार्दन ने कब सत्ता संभाली, यह ज्ञात नहीं है। सन् 1613 के एक ताम्रपत्र में बलभद्र वर्मन को राजा लिखा है और जनार्दन को महाराज कुमार। बलभद्र वर्मन को राजा का संबोधन 1629 तक रहा। जनार्दन के समय चंबा की नूरपुर से लड़ाई आरंभ हो गई। इस लड़ाई में चंबा की हार हुई और जनार्दन का भाई मारा गया। नूरपुर के राजा जगत सिंह ने चंबा नगर को लूटा। संधि के बाद भी जगत सिंह ने जनार्दन को मार दिया। यह घटना लगभग 1623 में चंबा के महल में घटित हुई। जनार्दन का कोई उत्तराधिकारी नहीं था किंतु रानी गर्भवती थी। जगत सिंह ने महल में पहरा रखा कि यदि पुत्र हुआ तो उसे मार दिया जाए और पुत्री हुई तो उसका विवाह नूरपुर के राजपरिवार में किया जाए। कहा जाता है कि रानी को राजकुमार हुआ और धाय बाटलू ने उसे मंडी पहुंचा दिया। यह भी माना जाता है कि राजकुमार का जन्म पिता के रहते ही हो गया था। चंबा बीस वर्ष तक नूरपुर के अधीन रहा।

पृथ्वी सिंह

पृथ्वी सिंह (1641) के समय से 'वर्मन' के स्थान पर 'सिंह' उपनाम

लगाया जाने लगा। भूरिसिंह संग्रहालय चंबा में रखे मिंधल माता लेख में इस राजा का नाम पृथ्वी सिंह वर्मा लिखा है। वैशाख शुक्ल अष्टमी वि.सं. 1698 (8 अप्रैल 1641)लेख के अनुसार राजा ने मिंधल गांव प्रजा सहित देवी चामुंडा को दिया। माना जाता है कि पृथ्वी सिंह ने कुल्लू से चंबा जाते हुए यह कार्य किया और 1641 की गर्मियों में नूरपुर के अधिकारियों को निकाल चंबा का राज्य संभाला।

पृथ्वी सिंह की धाय बाटलू ने चंबा में सीताराम, मैहला में हिडिंबा और खजियार में खजि नाग के मंदिर बनवाए।

पृथ्वी सिंह के बाद चतर सिंह, उदय सिंह, उगर सिंह, दलैल सिंह, उमेद सिंह, राज सिंह, जीत सिंह, चढ़त सिंह, श्री सिंह, गोपाल सिंह, शाम सिंह शासक हुए।

चढ़त सिंह के समय फरवरी 1839 में पहली बार किसी यूरोपियन ने चंबा में प्रवेश किया। इस यूरोपियन का नाम विगने था। विगने ने चढ़त सिंह को मझोले कद, हल्के रंग, भारी शरीर, बड़ी बड़ी आंखों व कमजोर आवाज़ वाला बताया। राजा का भाई जोरावर सिंह सुंदर किंतु अप्रभावी चेहरे वाला था। राजा कुछ समय दरबार को देकर भाई सहित हाथी की सवारी करता था।

सन् 1845 के प्रथम सिख अंगेज युद्ध में सिखों की हार हुई फलतः मैदानों में जालंधर दोआब और पहाड़ों में सतलुज व व्यास के मध्य का इलाका अंग्रेजों को मिला। अतः चंबा ब्रिटिश शासन के अधीन हो गया। ब्रिटिश शासन ने चंबा को बारह हजार रुपये वार्षिक कर नियत किया और राजा श्री सिंह के एक सनद दी गई जिसके अनुसार पुत्र न होने पर उत्तराधिकार जीवित बड़े भाई को दिया जाएगा। 11 मार्च 1862 को पुत्र न होने पर गोद लेने का अधिकार भी दिया गया।

उसी समय सन् 1851 में चंबा के ऊंचे और रमणिक स्थानों को लेने का

चंबा की चकली मुद्रा

विचार हुआ। धौलाधार के पश्चिम में सेनेटोरियम बनाया गया जिसका नाम डलहौजी रखा। बाद में कटलघ, बखरोटा, भंगोर को भी ले लिया गया। बलून का क्षेत्र यूरोपियन सेना के लिए और बकलोह गोरखा सेना के लिए लिया गया। कुछ ज़मीनें और भी ली गईं। इनके एवज़ में वार्षिक कर में दो हजार, पांच हजार और दो हजार आठ रुपये की कमी कर दी गई।

भूरि सिंह

राजा गोपाल सिंह (1870) के तीन पुत्र थे- शाम सिंह, भूरि सिंह और प्रताप सिंह। शाम सिंह (1873) सितंबर 1902 में रोग ग्रस्त हो गया और इसने राजकाज अपने भाई भूरि सिंह के पक्ष में छोड़ दिया। ब्रिटिश सरकार ने यह बात मान कर 22 जनवरी 1904 को भूरि सिंह को राजा घोषित कर दिया।

भूरिसिंह सुसंस्कृत, न्यायप्रिय और कुशल प्रशासक था। उसने गद्दी संभालते ही सड़कों को चौड़ा करने और आरामगृह बनाने के कार्य आरंभ कर दिए। सन् 1906 मे राजा ने दो आरामगृह बनवाए। चंबा क्लब, रीडिंग रूम तथा पुस्तकालय स्थापित किए।

प्रथम जनवरी 1906 को भूरिसिंह को बादशाह ने नाइटहुड प्रदान की। सन् 1907 में राजा आगरा के वायसराय दरबार में अफगानिस्तान के अमीर से भेंट करने के लिए उपस्थित हुआ। सन् 1914 में महायुद्ध के लिए भूरि सिंह ने अपने को प्रस्तुत किया और 'मोस्ट एमीनेंट ऑडर' की नाइटहुड मिली। इसके कार्यकाल में वनों का प्रबंध पुनः राज्य ने अपने हाथ में ले लिया। राजस्व बढ़ कर सात लाख हो गया।

18 सितंबर 1919 को दरबार के समय भूरि सिंह को ब्रेन हेमरेज हुआ और चार दिनों के भीतर मृत्यु हो गई।

राजा राम सिंह

पंजाब के गवर्नर सर एडवर्ड मेकलेगन ने मार्च 1920 में राम सिंह को पूरी शक्तियां प्रदान कर राजा बनाया। राजा की शिक्षा मि. ई.एम. एक्सिन द्वारा हुई तथा लाहौर के बाद देहरादून में मिलिट्री ट्रेनिंग दी गई।

इस राजा के समय चंबा से नूरपुर सड़क, चक्की में सस्पेंशन पुल, चंबा से भरमौर सड़क, जो बीस बरस पहले शुरू की गई थी, खणी तक ले जाई गई। डाक सेवाओं को और बढ़ाया गया। नगर में जल आपूर्ति तथा बिजली लगाने पर छहत्तर हजार रुपये व्यय किए गए। राज्य का राजस्व नौ लाख तक बढ़ गया।

एक नवंबर 1921 को राज्य सीधा भारत सरकार (ब्रिटिश) के अधीन आ गया।

इस समय राजपरिवार में रानी आशाकुमारी विधायक हैं। वे चार बार विधायक और एक बार मंत्री रह चुकी हैं।

पुरातन राजधानी भरमौर के महत्त्वपूर्ण शिलालेख

चंबा की प्राचीन राजधानी ब्रह्मपुर (भरमौर) में लक्षणा देवी, गणेश तथा शिवमंदिर के प्रांगण में खड़े नंदी के आधार के नीचे महत्त्वपूर्ण शिलालेख हैं। जे.पी.एच. वोगल ने इन शिलालेखों का विस्तृत वर्णन किया है।

यहां कुछ शिलालेख दिए जा रहे हैं। जिन में ब्रह्मपुर मंडल, चंबा के मूषक वंश, रानी नैनादेवी (रानी सूही), चंबा के 'चंपक निवास' का उल्लेख है।

भद्रकाली लक्षणा देवी

लक्षणा देवी की अद्वितीय मूर्ति महिषासुर मर्दिनी के रूप में है। मूर्ति 3'4'' है और इसका आधार 9''। देवी का दायां पांव महिषासुर को दबाए हुए है। दाएं हाथ से इसका सिर त्रिशूल से दबा रखा है जबकि बाएं हाथ से महिषासुर की पूंछ उठा रखी है जिससे उसका धड़ ऊपर उठा हुआ है। तीसरे दाएं हाथ में तलवार है और चौथे बाएं हाथ में घंटी।

त्रिशूल जो शिव का शस्त्र है, देवी का भी। यह इन्द्र के वज्र के समान है। गधेरन में देवी के मंदिरों में त्रिशूल चढ़ाया जाता है। घंटी शत्रुओं को भयभीत करने का प्रतीक है।

लेख

मूर्ति के आधार का लेख $18^{1/2}$ तथा $17^{1/4}$ लंबी दो पंक्तियों में हैं। अक्षरों का आकार लगभग 3'8" से 1'2" है। उत्कीर्ण व्यवस्थित ढंग से किया गया है। यह कार्य मेरु वर्मन के आदेश से कारीगर गुग्गा द्वारा किया गया है।

मूलपाठ

ऊं।। मोषूणस्वगोत्त्रदित्यवंशसंभूत, श्रीआदित्यवर्मनदेव, पौत्रै श्रीवलवर्मनदेव पौत्र, श्रीदिवाकरवर्मनदेवपुत्रेण।। श्रीमेरुवर्मनणा।। आत्मपुण्यवष्डये लक्षणादेव्यार्च्च ग कारापिताः।। 0।। कर्म्मीण गुग्गेण।।

शुद्धपाठ

ओम्।। मोषूणस्वगोत्त्रादित्यवंशसंभूत-श्रीमदादित्यवर्मदेवप्रपौत्र-श्रीबलवर्मदिवपौत्र-श्रीदिवाकरवर्मदेवपुत्रेण (1.2) श्रीमेरुवर्मणात्मपुण्यवष्डये लक्षणादेव्या अर्चा ग कारिता। कर्मिणा गुग्गेन।।

लक्षणा देवी प्रतिमा

अनुवाद

ऊं मोषूणगोत्रेद्भव सूर्यवंशी श्री आदित्य वर्मदेव के प्रपौत्र श्री बलवर्म देव के पौत्र तथा श्री दिवाकर वर्म देव के पुत्र श्री मेरु वर्मा ने पुण्य वृद्धि हेतु लक्षणा देवी जी की मूर्ति का गुग्गा मिस्त्री से निर्माण करवाया।

गणेश

गणेश की मूर्ति 3' है और आधार 14.$^{1/2}$"। मूर्ति की दोनों टांगें टूट चुकी हैं। किंतु आधार में कमल दल के अवशेष अभी भी हैं। कमर में बाघ चर्म और शरीर में सर्प धारण किए हुए गणेश की तीन आंखें और चार हाथ हैं। आधार में सिंहासन के प्रतीक एक जोड़ी-सिंह है। बीच में हाथी के कानों वाली आकृति है जिस के ऊपर लेख है।

गणेश की यह मूर्ति कलाकार गुग्गा की अद्वितीय कृति है जिसमें गणेश की अद्भुत छवि दिखाई गई है।

लेख

मूर्ति के आधार में चार पंक्तियों का लेख है। पंक्तियों की लंबाई बराबर न हो कर 13" से 5$^{3.4}$" तक है। चौथी पंक्ति दो भागों में है। अक्षर 1/4'' से 3/8'' तक हैं। लिखावट साफ-सुथरी है। लेख की सामग्री लगभग वही है जो लक्षणा देवी

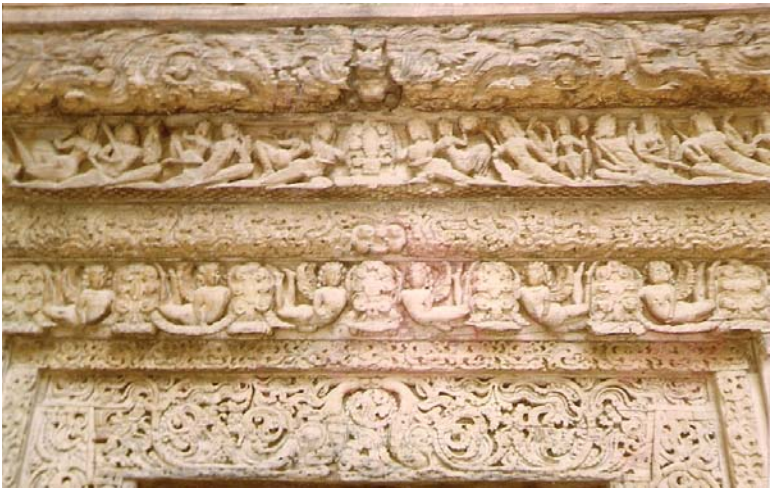

लक्षणा देवी में काष्ठकला

लेख में है।

मूलपाठ

ऊं नमः गणपतये।। मूशूस्वगोत्रदित्यवंशसंभूत-श्री आदित्यवर्मनदेव-पंपौत्त्र (1.2) श्रीवलवर्मनदेवानुपोत्र- श्रीदिवाकरवर्मनदेव-सूनुना।। (1.3) महाराजाधिराज-श्रीमेरुवर्मनणा कारापितेदेव-धर्मनो यं ।। (1.4) कर्म्मीण गुग्गेण।।

शुद्ध पाठ

ऊं नमो गणपतये।। मूषूणस्वगोत्रा दित्यवंशसंभूत- श्रीमदादित्यवर्मदेवप्रपौत्र- (1.2) श्रीबलवर्मदेवपौत्र- श्रीदिवाकरवर्मदेवसूनुना (1.3) महाराजाधिराज- श्रीमेरुवर्मणा कारितो देय धर्मोऽयं (1.4) कर्मिणा गुग्गेन।।

अनुवाद

ऊं गणपति जी को प्रणाम। मूषणगोत्रेद्भव आदित्यवंशी श्रीमान् आदित्यवर्म देव के प्रपौत्र श्री बलवर्म देव के पौत्र और श्री दिवाकर वर्म देव के पुत्र महाराजाधिराज श्री मेरु वर्मन ने कार्मिक गुग्गा के द्वारा इस पवित्र उपहार का निर्माण करवाया।

नंदी

मणिमहेश मंदिर भरमौर के प्रांगण में खड़े नंदी की ऊंचाई 5' है और इसका आधार 13' है। नंदी की पूंछ, कान और घंटी क्षतिग्रस्त है। लोकास्था है कि यह क्षति बाहरी आक्रमणकारियों द्वारा की गई किंतु इन आक्रमणों की पुष्टि नहीं होती।

आक्रमणकारी मुसलमान न होकर यारकंद से आए बताए जाते हैं। मेरु वर्मन के पौत्र लक्ष्मी वर्मन के समय कीरों के आक्रमण की बात वंशावली में है जिसमें राजा की मृत्यु हो गई थी। इस आक्रमण का संबंध मूर्तियों की क्षति से जोड़ना युक्तिसंगत नहीं है।

लेख

लेख 3'2'' लंबी दो पंक्तियों में हैं। तीसरी पंक्ति में कलाकार का नाम है। अक्षर लगभग 1/2" आकार में हैं। लेख लिखने वाले ने कलाकार की तुलना में कम संतोषजनक कार्य किया है क्योंकि लेखक को संस्कृत का पूरा ज्ञान नहीं था। व्याकरण का अल्प ज्ञान होने से इसे समझ पाना भी आसान नहीं है। लेख से पता चलता है कि मेरु वर्मन ने मंदिर का निर्माण करवाया जो मेरु पर्वत के समान था। यह निश्चित नहीं है कि यह शिखर शैली का मंदिर मेरु वर्मन ने बनवाया। संभव है यह मंदिर पहले लक्षणा देवी मंदिर की शैली में ही रहा हो, बाद में इसे शिखर शैली में पुनर्निर्मित किया गया।

मूलपाठ

ऊं प्रासाद मेरुसदृंश हिमवन्तमूर्ध्निः कृत्वा स्वयं प्रवर-कर्म्मशुभैरनेकैः तच्चनद्रशालरचितं नवनाभ नाम प्राग्ग्रीवकैर्व्विविधमणडपनैः क्वचित्रैः।। (1.2) तस्याग्रतो वृषय पोन-कपोलकायः संश्लिष्ट-वक्षककुदोन्नतदेवयानः श्रीमेरुवर्मन चतुरोदधि-कीर्तितरिशाः मातापितः सत्तमात्मफलानुवृडैः।। (1.3) कृतं कर्म्मीण गुग्गेनः।।

नंदी प्रतिमा

शुद्धपाठ

ऊं।। प्रासादं मेरुदृशं हिमवन्मूर्ध्नि कृत्वा स्वयं प्रवर-कर्मशुभैरनेकैः। तच्चन्द्रशाला रचिता नयनाभिरामा प्राग्ग्रीवके र्विविधैर्मण्दपैर्नेकचित्रैः।। (1.2) तस्याग्रतो (स्थापितो) वषृभः पीन-कपोलकायः संक्ष्लिष्टवक्षःककुद उन्नतदेवयानं। श्रीमेरुवर्मणश्चतुरुदधि (समतिक्रान्त) कीर्तिरेष मातापित्रेररात्मनश्च सत्तफलाभिवृडशै।। (1.3) कृतं कर्मिणा गुग्गेन।।

अनुवाद

ऊं ! अपने अनेक शुभ कर्मों के साथ-साथ हिमालय के ऊपर मेरु पर्वत के समान एक ऊंचे प्रासाद (देव मंदिर/राजभवन) का निर्माण किया। इसमें एक नयनाभिराम चंद्रशाला का भी निर्माण कराया गया जो पूर्व दिशा की ओर थी तथा अनेक मंडपों से वह सुसज्जित थी एवं अनेक चित्रों से शोभित।

उसके आगे एक सुंदर नंदी (बैल) की मूर्ति की स्थापना की गई। यह वृषभ पुष्ट देह, ऊंची ककुद और स्थूल भरे हुए मुंह वाला जो भगवान् शंकर का वाहन है। अपने माता-पिता तथा अपने आध्यात्मिक लाभ हेतु चारों समुद्रों तक जिनकी कीर्ति फैली हुई है उन श्री मेरु वर्मन ने इसका निर्माण कराया शिल्पी गुग्गा के द्वारा।

युगाकरवर्मन का भरमौर ताम्रपत्र लेख

यह ताम्र पत्र 13.1/2" चौड़ा 8.1/4" ऊंचा है और अक्षरों का औसत आकार 3/16'' है। ताम्रपत्र के चारों कोने टूटे हुए हैं जिसमें कुछ अक्षर मिटे हैं। निचले कोनों में अंतिम दो पंक्तियों के पहले चार अक्षर मिटे हैं। चौदहवीं पंक्ति के अक्षर और उन्नीसवीं के नौ अक्षर मिटे हैं।

ताम्रपत्र का आरंभ शिव स्तुति से होता है। आगामी पंक्तियों में युगाकर वर्मन और उनके माता पिता साहिल और नीना का नाम है। जिस पंक्ति में दान या अनुदान का उल्लेख है, वह स्पष्ट नहीं है।

ताम्रपत्र में 'ब्रह्मपुर' का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। 'चंपक' वाणि तथा अन्य गांवों के नाम भी ध्यान आकर्षित करते हैं।

लोक में प्रचलित रानी सूही की जगह यहां रानी नैना देवी आया है। राजा का निवास 'चंपक निगह' लिखा है।

ताम्रपत्र की भाषा अशुद्ध है। अधिकतर अशुद्धियां संभवतः उत्कीर्ण करती बार हुई होंगी। उत्कीर्णकार ने कुछ अक्षर छोड़ दिए या गलत लिखे।

मूलपाठ

स्वस्तिः ओं गणपतये नमः।। अ..... सलिल-वह्नि-व्योम- वायवान्तरात्म. ..... (1.2) पुराण स्वाङग् संभूत-योने। हर तव शिवशर्व त्र्यम्बकेशान रुद्र त्रिणयन वृषभाङ्का(1.3)नन्तमूर्ते नमस्ते।। श्रो-चण्पका- वासात्परमब्रह्मण्यदेव- द्विज-गुरु-भक्त-परमभटारक-म (1.4) हाराजाधिराज- परमेश्वर-श्रीमत्साहिल-देव-पादानुध्यातपरमभटारिका-महाराज्ञी- श्री-नेन्ना- देव्योदर-समुत्प (1.5) न्नोएकारातिचक्रनिर्मूलन-महादान-सलिलसेतु- समभिर्धित-यश-पादप।। परमभटारक-महाराजा-(1.6) धिराज-परमेश्वर श्रीमद्यगाकरवर्म- देव कुशलीस्वशास्यमान-ब्रह्मपुर-मण्डल प्रतिबद्ध-विडविका (1.7) ग्राम-प्रतिबद्ध-पूर्वे खणी-मठस्य कोल्हिक-सत्क-भू 2 एशां मध्या हरिहल्ल-रांकिल स्वतस्य-सुतस्य प्रविष्टिं शब्दबग्ग (1.8) नाम श्रेत्रं तस्यपरिवर्ते दत्तं ग्रिम-ग्रामे चन्दि आकुटनागविक-सत्क-रहड्क्-सुत-गण- भुच्यमाना-कुटिका-वाप्ये (1.9) य-धानापिटकमेक दत्तम् (?) तथा खणी-मठस्य सन्निश्कृष्ट-यमलिका शाकवाटिका तत्र वाप्ये पिटक-द्वय (1.10) मङकृतः 2।। उभौ कुटिका-सहित पि 3 तथा धारूवाटिकार्धंच। सर्वानेव नियोगस्थांन् राज-राजानक-राजस्थानी- (1.11) यसर्व-सवासा बोधयत्यस्तु वः संविदितं प्रतिवासि-जनपदानां भगिकादीनां साष्टादश-प्रकृत्यादीनां महा-(1.12) राज्ञी-श्री-त्रिभुवनरेखा-

देव्या प्रतिष्ठित-नर सिंहस्य योमलकंतस्या प्रतिग्रहेणाग्रहारत्वेति प्रतिपादितम् (1.13) विदित्वा कीर्तिता 'नु' कीर्तितैः सर्वैः राजपुरुषौरउमन्तव्यं यतोस्पन्तप्रदर्शशासन-प्रामाण्यावसतुवसाप-(1.14) यतु भागेन प्रयछ नकेन चित्परिपन्थना कार्या।। अम्मि वंशे समुत्पन्ने य र कश्चि न्नृपतिर्भवे। तस्याहं ह (स्त-) (1.15) लग्नेस्मिन शाशनं मा व्यतिक्रमे।। पालनात्परमो धर्म पालनात्परमं तपः। पालनात्परमः स्वर्गो गरीयस्ते-(1. 16) न पालना।। यत्किं चित्कुरुते पापं जन्म-प्रभृति मानवः। एतगोचर्म-मात्रेण भूमिहर्ता न शुध्यते।। फाकृष्टां- (1.17) त्त्वा सबीजां ससा मालिणी। यावत्सूर्य-कृता लोकेतावत्स्वर्गे महीयते। तडागानां सहस्त्रेण (1.18) कोटि-प्रदानेन भूमि-हर्ता न शुध्यते।। अनुदकेषु रने शुक-कोटर-वासिशु। कृष्ण-(1.19) ये।। संवत 10 वैशाख वति 10।। दूतो न्नक्षपटिक-श्री-विवख लखित कायस्थ-जाटि (1.20) द्यगाकरवर्म-देव-स्वहस्तः।।

शुद्धपाठ

ऊं स्वस्तिः।। ओं गणपतये नमः।। अवनि-सलिल-वह्नि-व्योम-वायवन्तरात्म (1.2) पुराण स्वाङ्ग-संभूत-योने। हर भव शिव शर्वत्र्ययम्बकेशान रुद्र त्रिनयन वृशभाङ्का (1.3) नन्तमूर्ते नमस्ते।। श्री-चणपका-वासात्परमब्रह्मण्य-देव-द्विज-गुरु-भक्त- परमपभट्टारक-म (1.4) महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमत्साहिल-देव- पादानुध्यात-

परमभट्टारिका-महाराज्ञी-श्री-नेन्ना-देव्युदर-समुत्प-(1.5) न्नोऽने काराति-चक्र निर्मूलन-महामान-सलिल-सेतु-समभिवर्धित-य ा पादपः परमभट्टारक-महाराजा-(1.6) धिराज-परमे वर-श्रीमद्यगाकरवर्म-देव र कुशली स्वशास्यमान-ब्रह्मपुर मण्डल-प्रतिबद्ध-विडविका (1.7) ग्राम-प्रतिबद्ध-पूर्वे खणी-मठस्य कोल्हिक-सत्क-भू 2 एशां मध्याद्धरिहल्ल-रांकिल-सुतस्य प्रविष्टिं शब्दबग्ग- (1.8) नाम क्षेत्रं तस्य परिवर्ते दशं ग्रिम-ग्रामे चापि (?) आकुटनागविक-सत्क-रहङ्क- सुत-गण-भुज्यमान- कुटिका-वाप्ये (1.9) य-धाना-पिटक-मेकं दत्तम् तथा खणी-मठस्य संनिकृट-यमलिका शाकवाटिका तत्र वाप्ये पिटक-द्वय- (1.10) मङ्कतः 2।। उभौ कुटिका-सहितं पि 3 तथा शाक (?) वाटिकार्ध च। सर्वानेव नियोगस्थान् राज-राजानक-राजस्थानो-(1.11) यान्सर्व-सवासान् बोधयत्यस्तु वः संविदितं प्रतिवासि-जनपदानां भोगिकादीनां साष्टदश-प्रकृत्यादीनां महा- (1.12) राज्ञी-श्री-त्रिभुवनरेखा-देव्या प्रतिष्ठापित- नरसिंहस्य योमलकंतस्य प्रतिग्रहेणाग्रहारत्व इति प्रतिपादितम् (1.13) विदित्वा कीर्तिता कीर्तितैः सर्वैः राजपुरुषौरनुमन्तव्यं यतोऽस्मत्प्रदशासन-प्रामाण्याद्वसतु वास- (1.14) यतु भाग-न प्रयच्छतु न केन चित्परिपन्थना कार्या।। अस्मिन्वं ो समुत्पन्नो य र कश्चिन्नृपतिर्भवेत्। तस्याहं हस्त- (1.15) लग्नोऽस्मि शासनं मा व्यातिक्रमेत्।। पालनात्परमो धर्मः पालनात्परमं तपः। पालनात्परमः स्वर्गो गरीयस्ते- (1.16) न पालनम् ।। यत्किं चित्कुरुते पापं जन्म-प्रभृति मानवः। एतद्गोचर्म-मात्रेण भूमि-दानेन शुध्यते।। फाल-कृष्टां मही द- (1.17) च्चा सबीजां सस्य मालिनीम्। यावत्सूर्य-कृता लोकास्तावत्स्वर्गे महीयते।। तडागानां 3 सहस्त्रेण चाश्वमेधसाते (1.18) न च। गवां कोटि-प्रदानेन भूमि-हर्ता न शुध्यते।। अनुदकेशु 4 वनेषु शक-कोटर-वासिनः। कृष्ण-सर्पा हि जायन्ते भूमि-(1.19) दायं हरन्ति ये।। संवत 10 वैशाख वृति 10।। दूतो ऽत्रक्षपटलिक-श्री-विवख (लः?)।। लिखितं कायस्थ-जास (टेन।।?) 5 (1.20) श्रीमद्यगाकरवर्म-देव-स्वहस्तः।।

ऊं कल्याण हो! श्री गणपति जी को प्रणाम। पंचभूतों के स्वामी, हे त्र्यंबक, त्रिनयन, वृषभांक, अनंत मूर्ति भगवान् शंकर आपके चरणों में प्रणाम।

परब्रह्मस्वरूप देवद्विज और गुरुओं के प्रति अति श्रद्धा भाव रखने वाले महाराजाधिराज साहिल देववर्मा के चरणों का ध्यान करने वाली महारानी नैनादेवी के गर्भ से जन्म लेने वाले परम पराक्रमी, शत्रुओं का विनाश करने वाले, महाराजाधिराज युगाकरवर्मदेव अपने चंपक निवास से अपने राज्य के अंतर्गत ब्रह्मपुर मंडल में स्थित विडविका ग्राम के साथ लगी, पूर्व दिशा की ओर खणी मठ की कूहल लगने वाली अच्छी भूमि के भागों में से सब्ज़बाग नामक खेत, जिससे हरिहालशंकिला का पुत्र लाभान्वित हो रहा था उसको परिवर्तन करके उसे अलग भूमि देता है। ग्रिम नामक ग्राम में भी अपकुट नागरिक-सत्क-रहंक आदि के पुत्रों द्वारा जिसका उपयोग किया

जाता था कुटिका की भूमि में से बावड़ी वाले स्थान से धान का एक पिटक दिया गया। खणी मठ की बाही हुई ज़मीन में यमलिका नाम सब्जी का बगीचा आधा भी दिया। इन सबको मिलाकर तीन स्थान हुए।

वही राजाधिराज युगाकरवर्मनदेव सभी अधिकारियों, सभी राजा-राणाओं को मुख्य न्यायाधीश को और सभी निवासियों को सूचित या आज्ञापित करते हैं। आप सभी जो पड़ोस के निवासी हैं। भूमि के मालिक हैं और जो अन्य भी हैं राज्य के साथ जो भी संबद्ध हैं वे भी इस बात को जानें कि रानी श्री त्रिभुवन रेखा देवी द्वारा प्रतिमित नरसिंह के मंदिर के लिए ये समर्पित हैं। इस बात को जानकर हमारी आज्ञा और आदेश के कारण कोई भी राजा का अधिकारी इसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं डालेगा। आदेश से किसी भी शत्रु से इसकी रक्षा की जाए। हमारे कुल में कोई भी राजा हो वह हमारे हस्ताक्षरित इस आदेश का पालन करेगा।

क्योंकि दान का पालन करना ही परम तप है। इसमें स्वर्ग की प्राप्ति होती है। न पालने से नरक। जन्म भर में मनुष्य जो भी पाप करता है वह व्यर्थ मात्र भूमि दान से शुद्ध हो जाता है। बाही हुई ज़मीन को खेती सहित जो देता है वह जब तक सूर्यादिग्रह हैं तब तक स्वर्ग में निवास करता है। सौ तालाब बनाने और सौ अश्वमेध यज्ञ करने से तथा कोटि गोदान करने से भी दान की हुई भूमि का अपहर्ता शुद्ध नहीं होता। जलविहीन वनों में सूखे वृक्षों की कोटर में काले सर्प बनकर जीवनयापन करते हैं। वे जो किसी के हिस्से को खा जाते हैं या हरते हैं। संवत्-10, वैशाख तिथि 10, संदेशवाहक व कागजात रखने वाला विवाखा। इस कानूनी पत्र को लिखने वाला जसट। युगाकर महाराज के निजी हस्ताक्षर।

भरमौर शिलालेख

भरमौर से लगभग दो किलोमीटर पीछे जहां ब्रह्माणी नाला सड़क से होकर नीचे उतरता है, एक ओर चट्टान को काटकर शिवलिंग, देवी-देवताओं के चित्र खुदे हैं। नंदी के आगे खड़े शिव, गणेश, महिषासुर मर्दिनी के रूप में चतुर्भुजी देवी की मूर्तियां चट्टान उकेर कर बनाई गई हैं।

चट्टान में खुदी तीनों मूर्तियां वही हैं जो मेरु वर्मन द्वारा भरमौर में 700 ई. के लगभग बनवाई गईं। शिवलिंग भी भरमौर में स्थापित शिवलिंग की भांति है। केवल नृसिंह प्रतिमा यहां नहीं है। भरमौर में भी नृसिंह प्रतिमा न होने के आधार पर वोगल ने इस शिला प्रतिमाओं (Rock-cut-figure) को 700 से 950 ई. के बीच माना है।

इन शिला प्रतिमाओं के ऊपर वाली चट्टान में, जो एक दरार से विभाजित है, तिब्बती भाषा में शिलालेख है। तीन फुट दस इंच लंबी पंक्ति में मोटे अक्षरों में लिखे इस

लेख को ए.एच. फ्रैंके ने 'गरुड़ भगवान् का महिमामय अनुज राजकुमार' पढ़ा। फ्रैंके के अनुसार यह लेख प्राचीनतम लेखों में एक हो सकता है जो 700 से 900 ई. का रहा होगा। तिब्बत के राजकुमार का उल्लेख भरमौर पर तिब्बत की विजय के समय से जोड़ा जाता है। राजा लक्ष्मी वर्मन के समय कीरों द्वारा विजय को तिब्बत द्वारा विजय से संबंधित मान फ्रैंके ने इसे उस समय के होने की संभावना प्रकट की है।

छतराड़ी के लेख

शक्ति देवी छतराड़ी

शक्ति देवी छतराड़ी की चतुर्भुजी मूर्ति 4'6'' है। लक्षणा देवी की तरह मुख आयुद्ध त्रिशूल न हो कर 'शक्ति' है। दूसरे दाएं हाथ में कमल दल है। दोनों बाएं हाथों में घंटी तथा सांप है। देवी कमल के ऊपर खड़ी है जिसमें लेख का उत्कीर्ण हुआ है।

लेख

मूर्ति के आधार में 13'' लंबी दो पंक्तियों में लेख है। कलाकार का नाम 3'' की अलग पंक्ति में दिया गया है। लिखावट का उत्कीर्ण भरमौर के लेख से निम्न कोटि का है। अक्षरों का आकार 3/8'' से 1/2'' है। नंदी (भरमौर) के लेख की भांति इस में भी व्याकरण की अशुद्धियां हैं।

मूलपाठ

ओं आमो गिशुडकुलधुर्यवाहो श्री देवमर्नेति प्रसिडकीर्त्तिर्तस्यसुतः

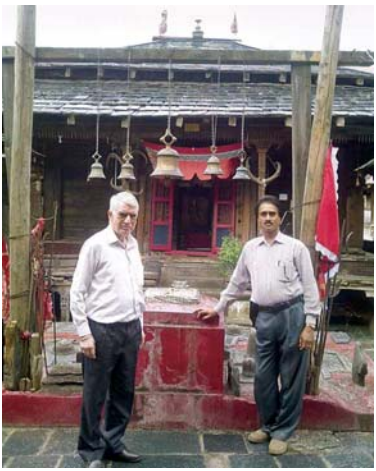

शाक्ति देवी छतराड़ी

सर्व्वगुणातिरामः श्रीमेरु-वर्मना प्रधिथत प्रिथिव्याः।। (1.2) मातापितः पुण्यनिमित्तपूर्व्व। कारापिता भक्तिता एव (?) शक्ति जित्वा रिपूं दुर्जयदुग्गेसंस्था कीर्त्तिर्य ोर्धर्मन-विवृध्यतायुः।। (1.3) कृतं कम्मर्नीण गुग्गेण।।

शुद्धपाठ

ओम्।। आमीद्दिशुङकुलधुर्यवाहः श्रीदेववर्मेति प्रसिद्धकीर्तिः। तस्य सुतः सर्वगुणाभिरामः श्रीमेरुवर्मा प्रथित (यशः) पृथिव्याम्।। (1.2) मातापित पुण्यनिमित्तं पूर्व कारिता भक्तित एवंशक्तिः जित्वा रिपून्दुर्जयदुर्गसंस्थाङ्कीर्तियशोधर्मविवर्धितायुः।। (1.3) कृतं कर्मिणा गुग्गेन।।

अनुवाद

विशुद्ध कुल प्रसूतों में अग्रणी श्री देव वर्मा की कीर्ति सर्वत्र फैली थी। उनके पुत्र श्री मेरु वर्मा सर्वगुण संपन्न तथा पृथ्वी पर प्रख्यात थे। उन्होंने अपने माता-पिता की तृप्ति के लिए तथा अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के बाद अपनी भक्ति को मां शक्ति के चरणों में प्रकट करने के लिए जिनकी कृपा से उन्हें विजय मिली-गुग्गा कार्मिक के द्वारा माता की मूर्ति का निर्माण करवाया।

गूं शिलालेख

चंबा से लगभग तीस किलोमीटर रावी के दाएं किनारे गूं कोठी है। पुराने भरमौर मार्ग पर (अब सड़क से ऊपर) तीन किलोमीटर चढ़ाई पर स्थित इस स्थान में देवी का मंदिर है। मंदिर के चारों ओर अनेक शिवलिंग हैं जो एक सौ एक माने जाते हैं। यहां एक शिला, जो संभवतः शिवलिंग के साथ की रही होगी, में एक शिलालेख है। शिला 3'2'' लंबी और 9'' ऊंची है। पंद्रह से अठारह इंच लंबी चार पंक्तियों के लेख में 3/8'' से 1) तक अक्षर हैं।

यह शिलालेख मेरु वर्मन के समय के शिलालेखों से भी पुराना माना जाता है। इसके अक्षरों की बनावट गुप्तकाल के प्रारंभिक काल से मिलती है। अतः आठवीं की अपेक्षा सातवीं शताब्दी का समझा जाता है। वोगल ने इस लेख को मेरु वर्मन के समय के साथ जोड़ा है। लेख आषाढ़देव का है जो मेरु वर्मन का सामंत था। आषाढ़देव ने शिवपुर के मध्य में 'षंकलीश' का मंदिर बनवाया।

मूलपाठ

ओं मोषीणादित्यवंग) (परम शिवनतो क्षत्रमादयात्तशुंग।

(1.2) श्री मेरोवमूर्मदेव कमलकिसलयाशत्य देवस्य पादा।

(1.3) सामन्त "आषाढ़देव सुतपितरजनो ब्रंण्डसेवाप्रसादा।

(1.4) कृत्वोयं देवधमूर्म शिवपुरमाधिक षंकलीशस्य हमूमर्य।।

शुद्ध पाठ

ओम।। मोषीणादित्यवंश (संभूत)-परम शिवनत---शुंग

(1.2) श्री मेरु वर्मनदेव-पादकमल किसलया श्रितेन

(1.3) सामंताषाढ़-देवेन सुरपित जनवृन्दसेवा-प्रसादात्

(1.4) कृतो यं देयधर्मः शिवपुरमध्यंग षंकलीशस्य हर्म्यम्

शिव भक्त, मूषण तथा आदित्य वंशी मेरु वर्मन के चरण कमलों में नत होकर सामंत आषाढ़ देव ने शिवपुरी के मध्य में षंकलीश के मंदिर का निर्माण कर अपने पितरों और देवताओं की सेवा की।

लेख की चारों पंक्तियां स्पष्ट अर्थ नहीं देतीं। तथापि इन में मेरु वर्मन के सामंत आषाढ़ देव द्वारा शिवपुरी के मध्य में षंकलीश के मंदिर बनवाए जाने का उल्लेख है।

शिलालेख से सिद्ध होता है कि मेरु वर्मन का राज्य रावी के निचले क्षेत्र में लगभग चंबा तक फैल गया था क्योंकि आषाढ़देव मेरु वर्मन का सामंत था।

षंकलीश की मूर्ति कहां है? यह अब ज्ञात नहीं है।

यहां दूसरा आकर्षण है सूर्य प्रतिमाओं का। एक-सी दो सूर्य मूर्तियों में एक अब भूरिसिंह संग्रहालय चंबा में है। हरमन गोट्ज ने रावी घाटी की इस मूर्ति को ससेनियन (ईरानी) वेशभूषा में और गुप्त शैली व तकनीक की माना है। सात घोड़ों पर सवार सूर्य की यह प्रतिमा हिमाचल तो क्या पूरे उत्तर भारत में एक अनूठी प्रतिमा है। सूर्य की मानवाकार मूर्ति बजौरा (कुल्लू) में शिव मंदिर में भी मिली है जो मंदिर के बाहर बंधी पड़ी है। राज्य संग्रहालय शिमला द्वारा इसे ले जाया जा रहा था किंतु स्थानीय लोगों की आपत्ति पर ऐसा नहीं हो पाया। यह मूर्ति भी आठवीं शताब्दी की मानी जाती है।

परिशिष्ट

मुसादा गायन

चंबा-भरमौर में गायन की एक विशिष्ट परंपरा है। इसमें कलाकार एक साथ खंजरी और रुबाना जैसे वाद्यों को एकसाथ बजाता है और साथ ही गाता भी है। इस गायन में रामायण, महाभारत, शिवपुराण गायन के साथ सामान्य गीतों को भी गाया जाता है। चंबा में ठेठ गायकी का भी प्रचलन रहा।

मुसादा गायक

चंबा के गायकों में प्रेमसिंह का नाम आज भी लिया जाता है। प्रेमसिंह चंबा के धड़ोध मुहल्ले के वासी थे। जहां अनुसूचित जाति के लोग रहते हैं। प्रेमसिंह के पिता भी गायक थे। राजाओं के समय में धड़ोघ मुहल्ले के गायक बहुत प्रसिद्ध थे। इस गायक मंडली के मुखिया प्रेम सिंह थे। प्रेम सिंह मज़हबी सिख थे अतः दाढ़ी रखते थे। दाढ़ी केश होने से वे महिला पात्र का रोल भी अदा करते थे। प्रेम सिंह और साथियों के मिंजर मेले में आते ही 'सुकरात', 'कुंजड़ी', मल्हार का समां बंध जाता। इनके गीत आकाशवाणी दिल्ली, जालंधर और शिमला से प्रसारित होते रहे। प्रेमसिंह के बारे में एक गीत प्रसिद्ध है :

सिक्खा प्रेम सिंघा हो, बौंए हत्थे बाजा बजाणा हो
बाजा बजाणा हा ते मन मोही लैणा हो।

मिट्ठा बोल सुणाणा ते दिल मोही लैणा हो।

प्रेम सिंह को हिमाचल प्रदेश के लोक संपर्क विभाग ने चंबा के कार्यालय में गायक की नौकरी प्रदान की। अगस्त 1988 में इनका देहावसान हो गया। इनके पौत्र धर्मेंद्र सिंह और हरविंदर सिंह ने गायकी की परंपरा को आगे बढ़ाया।

वास्तव में चंबा में दो तरह की गायकी गाई जाती थी। एक तो राजा के यहां गायन होता जिसमें सेमिक्लासिकल किसम का गायन था। ऐसे गीतों में पंजाबी का पुट भी रहता था। दूसरी तरह के गीत लोकगीत थे जिन्हें 'फाटेडू' कहा जाता जो बांसुरी के साथ गद्दी लोग अपनी भेड़ बकरियों के साथ गाते।

पुराने गायकों में साहो से रेलो देवी मशहूर गायक रही हैं। नये और समकालीन गायकों में पीयूष राज एक मंजे हुए गायक है।

कुछ अन्य लोकगीत

चंबा के गीत अपने काव्य और धुनों के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय है। यहां का संगीत अपनी प्रकार का है। यहां कुछ चुनींदा गीतों के उदाहरण दिए जा रहे हैं। चंबा और विशेषकर भरमौर के लोग शिव भक्त हैं। चंबा के लक्ष्मीनारायण मंदिर परिसर में शिव को बराबर का स्थान दिया गया है। मिंजर मेले में शिव स्तुति के गीत गाए जाते हैं :

शिव स्तुति

एक

धूड़ू नचेया
धूड़ू नचेया जटा ओ खलारी ओ
धूड़ू नचेया जटा ओ खलारी हो।

गंगा गौरां पाणिए जो गईयां हो।
गंगा गौरां सरो पैर लड़ियां हो।

गंगा पुच्छदी, क्या लगदी तू मेरी हो
गौरां बोलदी मैं सौकण तेरी हो।

गंगा जो लई गेया भगीरथ चेला हो
धूड़ू रई गेया केल मकैला हो।

दो

सिब कैलासों के बासी
सिब कैलासों के बासी धौलीधारों के राजा
संकर संकट हरणा।

तेरे कैलासों का अंत नी पाया
तेरे कैलासों का
अंत बेअंत तेरी माया ओ मेरे रामा
अंत बेअंत तेरी माया।
सिब कैलासों के बासी।

नंगे नंगे पैरां तेरे जातरू जे आए
भरदे जै जैकारा ओ भोले बाबा
भरदे जै जैकारा
सिब कैलासों के बासी।

अंग बभूति ढोह्लू संवारे
दरसन किया तेरे करणा ओ भोले बाबा
दरसन किया तेरे करणा
सिब कैलासों के बासी धौलीधारों के राजा
संकर संकट हरणा।

प्रणय गीत

(कूंजू चंचलो चंबा की एक प्रसिद्ध प्रणय लोकगाथा है।)

कूंजू चंचलो

कपड़े धोआं छम-छम रोआं चंचलो, बिच कै बो नसाणी हो।
हाय बो मेरिए जिन्दे बिच कै बो नसाणी हो।
कपड़े धोआं छम-छम रोआं कुंजुआ, बिच बटण नसाणी हो।
हाय बो मेरिए जिन्दे बिच बटण नसाणी हो।
गोरी-गोरी बांह लाल चूड़ा चंचलो, बिच कै बो नसाणी हो।
हाय बो मेरिए जिन्दे बिच कै बो नसाणी हो।
गोरी-गोरी बांह लाल चूड़ा चंचलो, बिच गजरा नसाणी हो।
हाय बो मेरिए जिन्दे बिच गजरा नसाणी हो।
लोक तां गलांदे काली-काली चंचलो, तू तां मरुए दी डाली हो।

हाय बो मेरिए जिन्दे तू तां मरुए दी डाली हो।
हत्था कने हत्थ मत लांदा कुंजुआ, हत्थे सोने दी गुठ्ठी हो।
हाय बो मोरिए जिन्दे हत्थे सोने दी गुठ्ठी हो।
सोने दा गम मत कर चंचलो, चंबे सोना बथेरा हो।
हाय बो मेरिए जिन्दे चंबे सोना बथेरा हो।
बांहीं कने हत्थ मत लांदा कुंजुआ, बांहीं चांदिए दे गजरे हो।
हाय बो मेरिए जिन्दे बांहीं चांदिए दे गजरे हो।
गजरयां दा गम मत करैं चंचलो, चंबे चांदी बथेरा हो।
हाय बो मेरिए जिन्दे चंबे चांदी बथेरा हो।

कुंजू-चंचलो (रूपांतर)

कपड़ेआं धोआं कने रोआं कुंजुआ,
मुखों बोल जुबानी ओ। मेरिए जिंदे। (टेक)
असां चली जाणा परदेस चैंचलो,
रख गूठी नसाणी ओ। मेरिए जिंदे।
गूठिया तां तेरिया नि मैं पांदी,
चंबे सुन्ना भत्हेरे ओ। मेरिए जिंदे।
छातिया ने छाती मत लांदी चैंचलो,
छाती बटणा दी जोड़ी ओ। मेरिए जिंदे।
बटणा रा बसोस मत करें कुंजुआ,
चंबे बटण भत्हेरे ओ। मेरिए जिंदे।
मुंहें कने मुंहें मत लांदी चैंचलो,
तिज्जो खांसी बमारी ओ। मेरिए जिंदे।
खांसिया दा डर मत करैं कुंजुआ,
चंबे बैद भत्हेरे ओ। मेरिए जिंदे।
कलकिया राती चली जाणा चैंचलो,
कम पई गिया भारी ओ। मेरिए जिंदे।
कलकिया राती न जायां कुंजुआ,
लंघी औयां दुआरिया ओ। मेरिए जिंदे।
राती बराती में न औंदा चैंचलो,
तेरे घरें तां बंदूकां ओ। मेरिए जिंदे।

फुलमू-रांझू

(कूंजू चंचलों की भांति फुलमू रांझू भी प्रणय गाथा है।)

गुआडुऐं पच्छुआडुऐ तू कजो झाकदी,
झाकां कजो मारदी।
दो हत्थ बुटणे दे ला फुलमू,
गल्लां होई बीतियां।

बूटणा लगान तेरियां सक्की भाभियां,
तेरीयां ताईयां-चाचियां।
जिन्हां जो ब्याहे दा चा ओ रांझू,
गल्लां होई बीतियां।

मैं तां होया मजबूर फुलमू,
तिज्जो ते दूर फुलमू।
पंडतां कित्ता मेरा नास,
गल्लां होई बीतियां।

जिन्नी तां बाह्मणे तेरा ब्याह रखेया,
ओ ब्याह गिणेया।
उसदी नि पाए परमेसर पूरी,
गल्लां होई बीतियां।

बाह्मणां दा दोष नि किछ फुलमू,
ऐह तां कर्मा दा लिखया होयै।
कर्मा दा लिखयां नि मिटै फुलमू,
गल्लां होई बीतियां।

जाणदी परीता करी दुख भोगणा,
जानी दुख भोगणा।
भुल्ली नि पांदी मैं परीत,
गल्लां होई बीतियां।

इक्की पासें रांझू ब्याहणा चलेया,
ब्याहणा चलेया।
दुए पासें फुलमू दी लाश चली,
गल्लां होई बीतियां।

ठप्पा-ठप्पा क्हारो मेरी पालकिया,
मेरी पालकिया।

फुलमू जो दाग मैं देयां,
गल्लां होई बीतियां।

विरह गीत

एक

रित संघढ़ोणी हो

प्यारी प्यारी हो क्या लांदा मेरेया प्यारूआ
बाईं पुर भाल़ें हो तेरे दोस्त मेरेया प्यारूआ।

अबे जोते बला जोते ओ लगा सीणा मेरेया प्यारूआ
मिंजो तेरा चेता ओ लगा ईणा मेरेया प्यारूआ।

जोता री थकूरी ओ मत छेड़ैं मेरेया प्यारूआ
जोता पर भाल़े ओ मेरी पतलि़या भाखा प्यारूआ।

पकड़ी पछैणे हो मेरी भाखा मेरेया प्यारूआ
अबे जोता बला जोता हो लगा सीणा मेरेया प्यारूआ।

अज छतराड़ी ओ कल राखा मेरेया प्यारूआ।
रित संघड़ोणी हो चलैं आयां मेरेया प्यारूआ।

अज छतराड़ी ओ डेरा राखा मेरेया प्यारूआ।
मंगले खंडोरे हो बुरे बारें मेरे प्यारूआ।

भेडा बला पुछदी ओ तोड़ बकरी रे भैणे मेरेया
कातकी केह्रे बिछड़े ओ अबे मिलणा बसाखा प्यारूआ।

कातीं रे बिछड़े हो असां मिलणा कधाड़ी प्यारूआ।
कातीं रे बिछड़े हो असां मिंजरां च मिलणा प्यारूआ।

दो

भेडा केरिआ पाह्लणुआ
भेडा केरिआ पाह्लणुआ, घरै जो ईयां हो
घरा जो किहां ईणा भेड़े सो लाया हो
सौ सुइयां भेड़लियां, पणासो सुइयां हो
धारा दिया पाह्लणुआं, मन सुंघड़ लग्गा हो

सुंघड़ लग्गा हो सुंघड़ौणा, मने बुरा बुरा लग्गा हो
घरा किहां ईणा भेड़ा सो लाया हो
कोढ़ा भला चितरा उरणु लई इच्छे फेरू पाणा हो
हंसु मोरू छेलु लई इच्छे, कुद्दणा पाणा हो
कुद्दणा पाणा हो जिंदड़ियां जो जिंद बणाली हो
भेड़ा भला तेरीं सोगे लाइयां घरा ऱ्डेरू हो
दुई भला अक्खे हंडकू रिझदा मुं केलिया खाणा हो
दो भला सेज मंजलु लाया मुं केलिया सोणा हो
भेड़ा केरिआ पाह्लणु, तू घरै जो ईयां हो

तीन

पारलिया बणिया

अम्मा पुच्छदी सुण धिए मेरिए
धिए भला दुबली कियांह् करी होई ए।

पारलिया बणिया मोर जे बोले हो
अम्मा जी इनीं मोरे निंदर गुआई हो।

सदली बंदूकी जो सदली सकारी जो
धिए भला एहियो मोर मारी मुकाणा हो।

मोर नी मारना मोर नी मुकाणा हो
अम्माजी एहियो मोर पिंजरे च पाणा हो।

कुत्थू जांदी चानणी कुत्थू जांदे तारे हो
अम्माजी कुत्थू जांदे दिला रे सहारे हो।

छुपी जांदी चानणी छुपी जांदे तारे हो
धिए भला छुपी जांदे दिला रे प्यारे हो।

अधी अधी राति मोर चंघोरे हो
अम्माजी इनीं मोरे सुतड़ी जगाई हो।
पारलिया बणिया मोर जे बोले हो
अम्माजी इनीं मोरे निंदर गुआई हो।

जुग जीओ

चंबा के आसपास चरागाहों के गूजर लोग वास करते हैं। उनका उल्लेख भी गीतों में आता है।

जुग जीओ धारा रेओ गुजरो,
देओ मेरे गाडा जो बसेखा ओ।

गाड तेरा होला जंगलाती ओ,
दिने सदणा तां इंदा राती ओ।

अग लगी बंद बणा तेरे ओ,
जित्थे मेरी बेजती जे होई ओ।

ठंडा-ठंडा मगडू रा पाणी ओ,
कीयां-कीयां पीणा मेरी जानी ओ

ठंडा-ठंडा मगडू रा पाणी ओ,
छम्बे करी पीणा मेरी जानी ओ।

दुख-सुख चार ता धयाड़े ओ,
फेरी असां माह्णू बणी जाणा ओ।

राजकुमारी चंबा व कुटलैहड़ (प्रचीन चित्र)

संदर्भ ग्रंथ

1. पाणिनी : अष्टाध्यायी
2. महाभारत : गीता प्रेस गोरखपुर
3. कल्हण : राजतरंगिणी
4. वोगल, जे. पी.एच. : एंटिक्यूटीज़ ऑफ चंबा स्टेट : 1911
5. ग्रिफिन, एल.एच. एंड मैसी : चीफ्ज एण्ड फेमिलीज ऑफ पंजाब : 1940
6. रिपोर्टस ऑफ दिल्ली रेजीडेंसी ऑन हिल स्टेट्स :1807-1857
7. हचिसन, जे. वोगल : हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स
8. गजेटियर्स : हिमाचल सरकार : 1927-1969
9. नेगी ठाकुर सेन : हिमाचल प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर चंबा 1963
10. फेयरज़ एण्ड फेस्टीवल्ज़ : सेंसिज ऑफ इण्डिया 1961
11. ए ग्लोसरी ऑफ द ट्राइब्ज एण्ड कास्ट्स :एच.ए.रोज़
12. गोट्ज़ हरमन :स्टडीज़ इन द हिस्ट्री ऑफ आर्ट ऑफ कश्मीर एंड इंडियन हिमालय
13. सांस्कृत्यायन, राहुल : हिमाचल प्रदेश : वाणी प्रकाशन
14. ओहरी, वी.सी. : प्री हिस्ट्री ऑफ हिमाचल प्रदेश
15. ओहरी, वी.सी. : आर्ट्स ऑफ हिमाचल प्रदेश भाषा-संस्कृति विभाग 1975
16. ओहरी वी.सी. : पहाड़ी चित्रकला के महान चितेरे : हिमाचल अकादमी 1994
17. गरीब खां : मुख्तसर त्वारिख रियासत चंबा : 1822
18. गोस्वामी बी.एन.: द पहाड़ी आर्टिस्ट्स
19. गोस्वामी बी.एन. एण्ड एबहार्ड फिशर : पहाड़ी मास्ट्र्ज़ :आक्सफोर्ड इण्डिया :1997
20. आर्चर. डब्ल्यू.जी. : इण्डियन पेंटिंग्ज़ फ्रॉम पंजाब हिल्ज : लंदन 1973
21. वशिष्ठ सुदर्शन : पर्वत से पर्वत तक, रिलायेंस पब्लिकेशिंग हाउस, नई दिल्ली :1996
22. वशिष्ठ सुदर्शन : हिमालय गाथा, जनजाति संस्कृति, सुहानी बुक्स दिल्ली-92 : 2010
23. वशिष्ठ सुदर्शन : पहाड़ी चित्रकला एवं वास्तुकला :शिवानी बुक्स नई दिल्ली-110002 : 2010
24. जे. पीएच. वोगल : केटलॉग ऑफ द भूरिसिंह म्युजिम एट चंबा :1909
25. डायरेक्टारेट ऑफ सेंसेज, सेंसेज ऑफ इण्डिया
26. स्टेट टाउन प्लानर हिमाचल प्रदेश
27. हिमाचल अकादमी पुस्तकालय, शिमला
28. राज्य अभिलेखागार, शिमला
29. राज्य संग्रहालय, शिमला
30. भूरिसिंह संग्रहालय, चंबा

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र

एक परिचय

भारत की बहुरूपी, समृद्ध, जीवंत सांस्कृतिक परम्पराओं एवं औपचारिक शिक्षा पद्धतियों के बीच अन्तर दूर करने हेतु मई, 1979 में सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र (सीसीआरटी) की स्थापना की गई। इसका मुख्य ध्येय तथा उद्देश्य समस्त सांस्कृतिक स्रोतों को साथ रखते हुए शिक्षा पद्धति में औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा के सभी स्तरों को अंतर्भूत करना है। उदाहरण के तौर पर पारंपरिक कलाओं: चाक पर मिट्टी का कार्य, बांधनी कागज़ के खिलौने समेत हस्तकलाओं का प्रशिक्षण, सांचे बनाना, पुतली कला की विभिन्न विधाएँ और नृत्य एवं संगीत के बहुरंगी रूप को न केवल इतिहास तथा सामाजिक विज्ञान वरन् गणित, रसायन एवं भौतिकी विज्ञान जैसे विषयों के संग शैक्षिक माध्यम के रूप में उपयोग में लाना।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कई नवीन योजनाएं विकसित की गईं। कार्यक्रम के स्तर पर शिक्षा प्रशासकों एवं शिक्षक प्रशिक्षकों हेतु नियमित कार्यशालाओं; शिक्षकों हेतु अनुस्थापन एवं पुनश्चर्या पाठ्यक्रम तथा विद्यार्थियों हेतु कार्यशालाओं एवं शिविरों का आयोजन किया जाता है। सांस्कृतिक प्रतिभा तथा विद्वत्ता की पहचान के लिये भारत सरकार की योजनाओं हेतु सीसीआरटी एक मुख्य संस्थान के रूप में कार्य कर रहा है।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सीसीआरटी, सांस्कृतिक सामग्री का संग्रहण व प्रलेखन करता एवं श्रव्य-दृश्य किट तैयार करता है, जो विभिन्न विन्यासों में क्षेत्रीय संस्कृति अथवा विशिष्ट कला रूप के अध्ययन को प्रोत्साहित करता है और जिन लोगों ने इन कला रूपों की रचना की है, उनके विषय में जानकारी देता है।

एक संस्था के रूप में सीसीआरटी ने एनसीईआरटी और राज्यों के स्तर पर एससीईआरटी के साथ एक विस्तृत नेटवर्क (कार्यतंत्र) स्थापित किया है। आज इसके तीन क्षेत्रीय केन्द्र उदयपुर, हैदराबाद तथा गुवाहाटी में हैं। सीसीआरटी ने भारत के शिक्षक एवं विद्यार्थी समुदाय में राष्ट्रीय एकता तथा सांस्कृतिक पहचान के आदर्शों को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समृद्ध तथा विविधतापूर्ण प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक धरोहर की इस धरा पर यह आवश्यक है कि भारत में आज का युवा अपनी तथा दूसरों की समृद्ध संस्कृति के प्रति एक गूढ़ समझ तथा सराहना की भावना को लेकर पल्लवित हो। सीसीआरटी के जन्म का श्रेय श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय तथा डा. कपिला वात्स्यायन (जो क्रमशः इसकी प्रथम अध्यक्ष व उपाध्यक्ष थीं) की दूर दृष्टि व प्रयासों तथा आठवें दशक में भारत सरकार के शिक्षा, समाज कल्याण एवं संस्कृति मंत्रालय के सहयोग को जाता है।

सीसीआरटी, भारत सरकार की राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रतिभा खोज छात्रवृत्ति योजना कार्यान्वित करता है, जिसका लक्ष्य विविध कलात्मक क्षेत्रों में विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान करना तथा सुविधायें उपलब्ध कराना है। 10 से 14 वर्ष के आयु समूह वाले शिक्षारत बच्चे या पारंपरिक कलारूपों से जुड़े परिवारों के बच्चे इस राष्ट्रीय सांस्कृतिक छात्रवृत्ति योजना में भाग लेने के पात्र हैं।

विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में युवा कलाकारों को छात्रवृत्ति प्रदान करने की योजना संस्कृति मंत्रालय द्वारा सीसीआरटी को स्थानांतरित की गई है, जिसके तहत भारतीय शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, नाट्य, दृश्य कला, लोक कला आदि क्षेत्रों में 18 से 25 वर्ष की आयु वर्ग के अधिकतम 400 युवा कलाकारों को छात्रवृत्तियाँ (निधि की उपलब्धता के अनुसार) प्रदान की जाती हैं।

सीसीआरटी संस्कृति मंत्रालय की कुछ अन्य नीतियों का भी कार्यान्वयन करता है, जैसे सांस्कृतिक पक्षों पर 400 शोध अध्येताओं को अध्येतावृत्ति प्रदान करना। इनमें 200 कनिष्ठ तथा 200 वरिष्ठ शोध अध्येताओं का चयन किया जाता है। शोध में मुख्य बल संस्कृति के विभिन्न पहलुओं में 'गहन अध्ययन/अनुसंधान' पर दिया जाता है, जिसमें सांस्कृतिक अध्ययनों के नये उभरते क्षेत्र भी शामिल हैं।

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र ने 1985 से सीसीआरटी शिक्षक पुरस्कार की स्थापना की है, जो प्रति वर्ष उन शिक्षकों को दिया जाता है, जिन्होंने शिक्षा व संस्कृति के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य किया हो। पुरस्कार में प्रशस्ति पत्र, प्रतीक चिह्न, अंगवस्त्रम् तथा नकद धनराशि ₹ 25000/-प्रदान की जाती है।

सीसीआरटी ने संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार की एक नई पहल के अन्तर्गत 'राष्ट्रीय संस्कृति एवं धरोहर प्रबन्धन संस्थान' की संकल्पना के अनुसार कला प्रबंधन योजना पर प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित करने आरंभ किए हैं।

संस्कृति मंत्रालय द्वारा वाराणसी में 'संस्कृति' परियोजना का नोडल एजेंसी के रूप में सहसंचालन एवं श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय की स्मृति में 'विरासत-कमला देवी' सांस्कृतिक उत्सव का आयोजन सीसीआरटी के महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। इसके लक्ष्य एवं उद्देश्यों के बारे में और अधिक जानकारी हेतु इसकी वेबसाइट www.ccrtindia.gov.in देखी जा सकती है।

क्षेत्रीय केन्द्र
सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
सीआईआई (कन्फेडेरेशन ऑव् इण्डियन इंडस्ट्री)
के सामने, गूगल कार्यालय के करीब
मधापुर से कोण्डापुर मुख्य मार्ग
मधापुर, हैदराबाद, आंध्र प्रदेश
पिन कोड: 500084
दूरभाष: 040-23117050, 23111918
ई-मेल : rchyd.ccrt@nic.in

क्षेत्रीय केन्द्र
सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
3बी, अम्बावगढ़, स्वरूप सागर झील के पास
उदयपुर, राजस्थान
पिन कोड: 313001
दूरभाष: 0294-3291577, 2430771, 2430764
ई-मेल : ccrtrcud@rediffmail.com

क्षेत्रीय केन्द्र
सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
58, जुड़ीपार, पंजाबारी रोड
गुवाहाटी, असम
पिन कोड: 781037
दूरभाष: 0361-2330152
इ-मेल : rc_ccrt@rediffmail.com

सुदर्शन वशिष्ठ

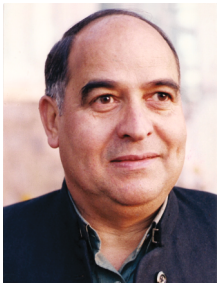

24 सितंबर, 1949 को पालमपुर (हिमाचल) में जन्म। 125 से अधिक पुस्तकों का संपादन/लेखन।

वरिष्ठ कथाकार। दस कहानी संग्रह, दो उपन्यास, दो नाटक, चार काव्य संकलन, एक व्यंग्य संग्रह। चुनिंदा कहानियों के पांच संकलन। हिमाचल की संस्कृति पर विशेष लेखन में *हिमालय गाथा* नाम से छह खण्डों में पुस्तक-शृंखला के अतिरिक्त संस्कृति व यात्रा पर बीस पुस्तकें। पांच कहानी संग्रह और दो काव्य संकलनों के अलावा सरकारी सेवा के दौरान सत्तर पुस्तकों का संपादन ।

ई-बुक्स : *कथा कहती कहानियां* (कहानी संग्रह), *औरतें* (काव्य संकलन), *डायरी के पन्ने* (नाटक), *साहित्य में आतंकवाद* (व्यंग्य), *हिमाचल की लोक कथाएं*।

जम्मू अकादमी, हिमाचल अकादमी, साहित्य कला परिषद् (दिल्ली प्रशासन) तथा व्यंग्य यात्रा सहित कई स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा साहित्य सेवा के लिए पुरस्कृत। हाल ही में हिमाचल अकादमी से *जो देख रहा हूँ* काव्य संकलन पुरस्कृत।

साहित्य के लिए हिमाचल अकादमी के सर्वोच्च *शिखर* सम्मान (2016) से सम्मानित।

कई रचनाओं का भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद। कथा साहित्य तथा समग्र लेखन पर हिमाचल तथा बाहर के विश्वविद्यालयों से दस एम. फिल. व पीएच.डी.।

पूर्व उपाध्यक्ष/सचिव हिमाचल अकादमी तथा उप निदेशक संस्कृति विभाग। पूर्व सदस्य साहित्य अकादेमी, दुष्यंत कुमार पांडुलिपि संग्रहालय, भोपाल।

वर्तमान सदस्य: राज्य संग्रहालय सोसाइटी, शिमला, आकाशवाणी सलाहकार समिति, विद्याश्री न्यास भोपाल।

पूर्व फेलो : राष्ट्रीय इतिहास अनुसंधान परिषद्।

सीनियर फेलो : संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार।

संप्रति : ''अभिनंदन'', कृष्ण निवास, लोअर पंथाघाटी, शिमला-171009।
(094180-85595, 0177- 2620858)
ई-मेल : vashishthasudarshan@yahoo,com

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)
15ए, सेक्टर-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075, भारत
दूरभाष: 91-11-25309300, फैक्स: 91-11-25088637
ई-मेल : dir.ccrt@nic.in, **वेबसाइट :** www.ccrtindia.gov.in